



# अग्रवाल जाति का विकास

[ पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर लिखा गया मौलिक इतिहास ]



लेखक—

श्री परमेश्वरौलाल गुप्त



प्रकाशक—

श्री काशी पेपर स्टोर्स

२१, बुलानाला

काशी

प्रकाशक—  
श्री कमलनाथ अग्रवाल  
काशी पेपर स्टोर्स  
२१ बुलानाला  
काशी

---

९४२

प्रथमवार

१

मूल्य ~~१००~~ रुपया

---

१ मुद्रक—  
श्रीनाथदास अग्रवाल  
टाइम टेबुल प्रेस,  
बनारस ४ ५-४२

# अग्रवाल जाति का विकास



हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवित्री  
स्व श्रीमती रामेश्वरी गोयल एम ए

**स्नेहशिला बहन**  
**रामेश्वरी गोयल एम ए**  
**की**  
**स्वर्गस्थ आत्मा को**

*A book is written not to multiply the oxc merely  
not to carry it merely but to perpetuate it. The author  
is some thing to you which he perceives to be true  
and helpful or useful beautiful. So far as he knows  
no one else has said it so far as he knows no one  
is bound to say clearly and unequivocally  
say clearly all events*

—Rusk n

# अग्रवाल जाति का विकास



लखक—

श्री परमेश्वरी लाल गुप्त

## विषय सूची

१—पुस्तक के प्रति	११ - १७
२—परिचय ( श्री बसन्तराव सुन्दरकर )	१७-१११॥
३—प्रस्तावना ( सर सीताराम )	१७-१११

### पूर्वार्ध

१—किंवदन्तिर्षो पृथ जगति	११ - १२
२—दो प्राचीन ग्रन्थ	१११ - २१
३—अप्रसेम से पूर्व	२२ - ५१
४—अप्रसेम	५२ - ६२

### उत्तरार्ध

१—जाति	७३ - ९
२—अप्रवाह'	९८ - १३

### परिशिष्ट

१—नागावह	१३१-१४०
२—गोत्र	१४८-१७९
३—विस्तार भेद और काल	१८०-१९६
४—वार्तिक	१९७-२०२

### चित्र फलक

१—प्रभास अभिलेख	९९
२—सारबन अभिलेख	१०३
३—आग्नेय गण की मुद्रा	११३



## पुस्तक के प्रति—

पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट है। इस विषय पर निकलने को तो बीसियों पुस्तकें निकली हैं पर उनमें से कोई भी ऐतिहासिक दृष्टि कोण से प्रामाणिक नहीं कही जा सकती। पिछले वर्षों अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास' नाम से एक पुस्तक डाक्टर सत्सुकेशु विद्यालंकार ने लिखी है जिसका दृष्टि-कोण नवीन है किन्तु उसका आधार भी सुनी-सुनाई अनुभूतियों ही है। अब तक न तो किसी ने ऐतिहासिक सामग्री खोजने का वास्तविक यत्न किया और न कोई ऐसी सामग्री ही उपस्थित की जो किसी को इस ओर प्रेरित कर सके। अस्तु—इसी अछूते क्षेत्र को लेकर पुस्तक लिखी गई है।

आरम्भ में प्राच्य ऐतिहासिक सामग्री का विशद विवेचन करके बताने का यत्न किया गया है कि अनुभूतियों पर आश्रित आज तक का हमारा ऐतिहासिक विश्वास कितना तथ्य रखता है और अन्त में पुरातात्विक सामग्री—शिलालेख मुद्रायें और प्राचीन पुस्तकें—के आधार पर अग्रवाल जाति के इतिहास पर पहली बार वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक में इतिहास की अपेक्षा ऐतिहासिक विवेचन ही विशेष है। इसमें पाठकों को जातीय इतिहास पर विचार और उसके खोज की प्रेरणा मिलेगी। इसके पढ़ने पर अपने ऐतिहासिक ज्ञान के बोध की कमी और तत्सम्बन्धी खोज की आवश्यकता का विशेष अनुभव होगा।

पुस्तक आज से तीन वष पूर्व लिखी गई और इस अवधि के बीच

इसमें प्रति-याचित मत लेखों के रूप में अग्रवाल द्वितीय (आगरा) अग्रवाल द्वितीय (बरेली) अग्रवाल सन्देश (काशी) और वैद्यक समाचार (दिल्ली) में प्रकाशित हुए। इस प्रकार मेरे विचार पाठकों के सम्मुख आ चुके हैं। मेरा यह मत निर्दोष और सवमान्य होगा ऐसा कहना मूल्यता होगी किन्तु इतना तो दृढ़तापूर्वक कहा ही जा सकता है कि जो तन्त्र मैंने उपस्थित किए हैं वे मौलिक और विचारणीय हैं।

प्रस्तुत पुस्तक को उपयोगी बनाने के उद्देश्य से अन्त में सहायक पुस्तक सूची और अनुक्रमणिका देने का विचार था किन्तु यह ऐसे समय प्रकाशित हो रही है जब देश में घोर अशान्ति फैली हुई है। ऐसे अशान्तिमय जीवन में इस समय इनका प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है इसलिए इसके लिए पाठक हमें क्षमा करेंगे। हो सका ता अगले संस्करण में यह त्रुटि पूरी कर दी जायेगी।

पुस्तक में हम तीन चित्र फलक दे रहे हैं जिनके प्रकाशन की आज्ञा हमें पुरातत्व विभाग और गवर्नमेंट एपीग्रफिस्ट ने उदारता पूर्वक दी है। उसके लिए हम उनके अनुगृहीत हैं। हम बरवाला से प्राप्त मुद्राओं का भी चित्र प्रकाशित करना चाहते थे और ब्रिटिश न्यूजियम के मुद्राविभाग के अध्यक्ष श्रीयुत ज एलन से उसे उनकी पुस्तक से उद्धृत करने की अनुमति भी प्राप्त हो गई थी जिसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। खेद है कि परिस्थितिवश उसे पुस्तक में न दे सके।

पुस्तक के लिखने में अनेक विद्वानों ने सूचनायें, निर्देश खोज और परामश देकर मेरी अतुल सहायता की है। उन लोगों की सहायता के बिना इस पुस्तक का लिखा जाना इतना सुगम न था। इन विद्वानों में से अधिकतर ऐसे लोग हैं जिनके चरणों में बैठकर सीखा जा सकता है सहायता नहीं ली जा सकती अन्य का सुस्वर बड़े भारी कर एनेह

रहा है। ऐसे लोगों की नामावली प्रकाशित कर उन्हें धन्यवाद के साथ अथवा कृतज्ञता प्रकाश करना पवित्र सम्बन्ध को मजबूत करना होगा। मेरा ज्ञान उन्हीं लोगों का आशीर्वाद है इसी आशीर्वाद की आकांक्षा में उसके सदैव करता हूँ मैं उन्हें दूँ भी तो क्या ?

पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार हो जाने पर भाई डाक्टर सत्यकेन्द्र विद्यालंकार जी ने पुत्री विद्योग से शोकग्रस्त एवं समयाभाव के होते हुए भी उसे आग्रोपान्त देखने और पाण्डुलिपि पर महत्वपूर्ण सूचनाएँ एवं नोट लिखने का कष्ट किया। आपकी इन सूचनाओं से मुझे पुस्तक की त्रुटियों को कम करने तथा अपना दृष्टिकोण करने में विशेष सहन्यता मिली है। इसके लिए मैं आपका विशेष कृतज्ञ हूँ।

आदरणीय श्रीबलरामलालजी सुरारका ने पुस्तक-परिचय और परब्रह्म श्रद्धेय श्री सर सीतारामजी ने प्रस्तावना लिख कर पुस्तक को सम्मानित किया है यह आप दोनों महानुभावों से प्राप्त स्निग्ध स्नेह का परिचायक रूप है। जो मेरी दृष्टि में अमूल्य है और उसका मूल्य किसी भी प्रकार चुकाया नहीं जा सकता।

स्थानीय पुस्तकालयों एवं काशी विश्वविद्यालय पुस्तकालय के अध्यक्षों पुस्तकालय विभाग के डाइरेक्टर जनरल तथा अन्य कुछ मित्रों विशेषतः श्री शक्तिभूषण जी गुप्त (अजमेरगढ़ स्टेट) ने अपनी पुस्तकों के उपयोग की सुविधा देकर इस पुस्तक के लिखने में मेरी विशेष सहन्यता की है। इसके लिये मैं आप लोगों का आभार मानता हूँ।

अन्त में सेठ हरकृष्णदास तुलस्यान का उल्लेख न करना कृतज्ञता होगी जिनके कटुवचनों से ही अर्माहित होकर इस पुस्तक का श्रीगणेश किया गया। साथ ही मैं भाई बिहारीदास सेठ एम ए० सी सी एम० का भी अनुग्रहीत हूँ जिनके प्रोत्साहन को पाकर ही यह पुस्तक लिखी जा सकी। सभी तैयार करने में भाई गोविन्ददास गुप्त एवं दादुरिन्द जी जंग बहादुरसिंह से जो सहन्यता मिली है, उसके लिए

उन्हें अनेक धन्यवाद । इन सबके ऊपर मैं आई कमलनाथ भद्रवाक का महत्व मानता हूँ जिनके उत्साह से पुस्तक प्रकाशित हो रही है । यदि आपने प्रकाशन का उत्साह न दिखाया होता तो पुस्तक अभी कुछ और समय तक अन्धकार के गत में पड़ी रहती । इसके लिए मैं आपका अनुगृहीत हूँ ।

गोपाल निकेत अजमेर  
रहता अन्धकार १९९२ ।

}

परमेश्वरीलाल गुप्त,

## परिचय

अग्रवाल जाति के इतिहास के सम्बन्ध में अब तक छोटी और बड़ी कई एक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें दन्तकथाओं भादों द्वारा कथित किंवदन्तियों तथा पौराणिक कथाओं द्वारा यह बताने की चेष्टा की गई है कि अग्रवाल जाति के आदि पुरुष अग्रसेन नाम के एक नृपति थे और उनके १८ पुत्रों के नाम से १८ गोत्र हुए आदि । वतमान पुस्तक के लेखक ने अब तक की प्रकाशित प्राय सभी पुस्तकों का अध्ययन करके यह निष्कष निकाला है कि अग्रसेन नाम के कोई ऐतिहासिक नृपति नहीं हुए जिससे अग्रवालों की उत्पत्ति का सम्बन्ध जाड़ा जा सके । आपने अग्रसेन या उग्रसेन नाम के उन सभी राजाओं पर एक समालोचक की दृष्टि से विचार किया है जिनका उल्लेख इतिहास में मिलता है अथवा जिनका सम्बन्ध अग्रवाल जाति से जोड़ने की चेष्टा भिन्न भिन्न लेखकों ने की है ।

पुस्तक के पूर्वाध में अब तक के प्रचलित विचारों पर आलोचनात्मक दृष्टि से लेखक ने अपने विचार प्रगट किये हैं । इसके बाद उत्तराध में जाति भेद का विकास बताते हुए आपने वैश्य जातियों के क्रमिक विकास का वर्णन किया है इसके बाद यह बतलाया है कि अन्य जातियों के समान ही अग्रवाल जाति के मूल में 'गण' और श्रेणी थी । इसी से 'अग्रश्रेणी' और उससे अग्रसेन की कल्पना की गई प्रतीत होती है । इसी प्रकरण से अग्ररोहे से अग्रवाल जाति का क्या सम्बन्ध था इसकी विवेचना की गई है । अग्रवाल शब्द पर विचार करते

हुए आपने बतलाया है कि अग्रवाल शब्द का विकास मुस्लिम काल में हुआ है। इसके पहले इस शब्द का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। आपने अग्रवाल शब्द पर भिन्न भिन्न मतों का विवेचन करते हुये अपना मत इस प्रकार प्रगट किया है —

‘अग्रवाल शब्द का तात्पर्य अग्र के निवासी है। अकेली अग्रवाल जाति ऐसी नहीं है जिसमें वाल प्रत्यय का प्रयोग हुआ हो। पालीवाल ओसवाल खण्डेलवाल वणवाल आदि सभी प्रत्यय वाली जातियाँ अपने नाम की निवासबोधक मानती हैं। ओसवालों की अनुसूति है कि उनका प्रादुर्भाव ओसनगर से है। खण्डेलवालों की उत्पत्ति जयपुर राज्य के खण्डेल नगर से हुई है। पालीवालों का जोधपुर के पस्कीनगर से सम्बन्ध है। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि अग्रवाल शब्द भी अपनी जाति के मूल निवास का बोधक है।

इसके बाद परिशिष्ट में नाग वंश अग्रवाल जाति के प्रचलित गोत्रों और उसके विस्तार भेद और शाखा के सम्बन्ध में लेखक ने अपने विचार प्रगट किए हैं और बतलाया है कि जो १८ अथवा साढ़े सत्तरह गोत्र माने जाते हैं इसके सम्बन्ध में—

मेरी धारणा है कि आग्नेय ग्रण में जिन १८ प्रधान कुलों का हाथ रहा उनका अथवा जिन मित्रों के सघ से वह मित्रपद बना था उनका द्योतक यह गोत्र है। यह भी सम्भव है कि अग्रश्रेणी के रूप में उसमें जिन १८ कुलों का निवास रहा हो उन्हीं के प्रतीक यह गोत्र हों।

लेखक का यह मत कुछ समीचीन भी प्रतीत होता है क्योंकि यदि एक ही पिता के १८ पुत्र होते और उन्हीं के करण १८ गोत्र बने हुए होते तो एक ही पिता के वंशजों में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध की प्रथा प्रचलित न हुई होती।

जो हो पुस्तक बड़ी विवेचना के साथ लिखी गई है और मैं समझता हूँ कि श्री सत्यकेतु जी की पुस्तक ‘अग्रवाल जाति का प्राचीन

इतिहास' के बाद इस पुस्तक का प्रकाशित होना बड़ा अच्छा है। कि-  
 अग्रवाल जाति के नवयुवकों में अपनी जाति के विकास के सम्बन्ध में  
 ऐतिहासिक विवेचन की प्रवृत्ति बढ़ रही है और यह इस जाति के  
 उत्थान के शुभ लक्षण हैं। मैं इस प्रवृत्ति की इच्छा से सराहना करता  
 हूँ और लेखक को धन्यवाद देता हूँ कि उसने महाराज आम्बेडकर और  
 अग्रवाल जाति के सम्बन्ध में अब तक की गवेषणाओं को ध्यान में  
 रखते हुए अपने निश्चित विचारों को अग्रवाल जाति के सम्मुख रखने  
 का स्तुत्य प्रयत्न किया है, जिससे उसे अपने प्राचीन विकास के सम्बन्ध  
 में सोचने का अवसर मिलेगा और भविष्य में आने वाले लेखकों को  
 इस सम्बन्ध में अधिक खोज करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

कलकत्ता

दीपमालिका सत्र १९९ ।

बसन्त लाल मुरारका

(सभापति—भक्ति भारतीय  
 अग्रवाल महासभा)

## प्रस्तावना

किसी जाति या उपजाति के विकास तथा विकास उसकी उन्नति तथा अवनति के क्रिय में सत्य ज्ञान उसकी खौरव रक्षा मान-भ्रमार्था स्थापना उत्साहात्तेजन तथा तीव्र चेतावनी के लिए आवश्यक है—इस सत्य ज्ञान के लिए परिश्रम निर्भीकता विद्वत्ता और अन्वेषण-साधन्य चाहिये । अग्रवालों की उत्पत्ति कब और कहाँ से हुई कौन कौन महापुरुष उसके जन्मदाता तथा भ्रैयस्कर हुए किस किसने जाति को समृद्धि सम्पत्ति व वैभव के शिखर पर पहुँचाया किस किस ने उसके लिए यश और महत्त्व प्राप्त कराया और किस किसके द्वारा या किन किन कारणों से इस अग्रवाल उपजाति ( या जाति ) का हास हुआ यह सब जानना आवश्यक ही है ।

कुछ पुराणों में कुछ भाटों ने कुछ मौखिक किंवदन्तियों में कुछ अग्रोहे के खड्गहरो में विद्वान् या सहृदय सजन इन बातों के पता लगाने का उद्योग करते रहे हैं । कई पुस्तकें भी छप चुकी हैं । किन्तु अभी ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अघरे में टटोलबाजी ।

श्री परमेश्वरीलाल गुप्त जी आजमगढ़ निवासी ने अपने परिश्रम स्वरूप यह पुस्तक लिखी है जो एक भिन्न दृष्टिकोण से इस जटिल समस्या पर प्रकाश डालती है उक्त गुप्तजी की सम्मति में श्री अग्रसेन कोई व्यक्ति न थे । इस कारण उनका वक्तव्य है कि अग्रसेन जयन्ती मनाना केवल भ्रम है । इस पर वाद विवाद होगा—किन्तु विषय ऐसा गभीर है जिस पर प्रत्येक विद्वान् हितैषी को अपनी सम्मति रखने और उसको प्रकाश करने का पूण रूप से अधिकार है ।



मैं समझता हूँ कि इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ा जावेगा । यदि अग्रोहे के खडहरों की नियमित रूप से खोज जारी रहे तो कौन जानता है कि जैसे मोहिंजोदारो और हरप्पा के खडहरा से अथवा तक्षिला या सभनाथ के दबे हुए स्थानों से विस्मयजनक और अखँ खोजनेवाली बातें मिलीं वैसी ही सकुचित रूप में भारत की एक प्रसिद्ध उपजाति अग्रवालों के विषय में भी हमारा ज्ञान अग्रोहे की खुदाई से बढ़े । क्या अग्रवाल घनी मानी इस ओर सगठित रूप से यान देंगे ? यदि इस पुस्तक से इस ओर बलात्कार ध्यान आकर्षित हो तो श्री परमेश्वरीलाल अपने को धन्य समझगे । अस्तु मैं इस पुस्तक का स्वागत करता हूँ जिसका अर्थ यह नहीं कि मैं लेखक महोदय के विचारों से सहमत हूँ ।

मेरठ  
८-१ -४२ }  
}

सीताराम

**पूर्वाद्ध**

## किंवदन्तियाँ एव जनश्रुति

भारतबध की वतमान वैश्य जातियो मे अग्रवाल जाति का प्रमुख स्थान है। यह सबसे वैभवशाली जाति समझी जाती है। इस जाति के विकास के सम्बन्ध में अनेक अप्रसेन प्रकार के मत प्रचलित हैं। साधारणतया अग्रवाल जाति अपना उद्भव अप्रसेन नाम के एक राजा से मानती है, और अपने का उनका वंशज कहती है। किन्तु अब तक अप्रसेन अथवा अग्रवाल जाति सम्बन्धी कोई प्रामाणिक एव प्राचीन इतिहास अथवा विवरण प्राप्य नहीं है। अबतक कोई ऐसा अभिलेख नहीं प्राप्त हो सका है जिससे अप्रसेन के सम्बन्ध में कुछ जाना जा सके। अग्रवाल जाति के इतिहास के रूप में जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं व सब भाटों द्वारा कथित किंवदन्तियों पर निर्भर करती हैं और प्रासंगिक अनुमान की जाती हैं।

अग्रवाल जाति का इतिहास लिखने का पहला प्रयत्न स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने किया। उनकी ९ पृष्ठ की पुस्तिका

क आधार पर कितने ही लेखको ने छाटे-माटे इतिहास लिखे और

भारतेन्दु कृत  
इतिहास श्रीहर्षचरित ने भी अपनी पुस्तक ' ट्राइब्स  
ऐण्ड कास्ट्स में उसीका अनुसरण किया  
है। उ होने अप्रसेन का जा विवरण दिया है

वह इस प्रकार है —

अप्रसेन पहले प्रताप नगर का राजा था। उसन नागलाक के राजा कुमुद की पुत्री माधवी स विवाह किया। माधवी के साथ विवाह के अनन्तर राजा अप्रसेन ने बहुत से यज्ञ बनारस और हरिद्वार में किए। उन दिनों कालपुर के राजा महीधर की कन्या का स्वयवर था। अप्रसेन वहाँ भी गय और महीधर का कन्या को स्वयवर म प्राप्त किया। अन्त म वह दिला के समीप बर्ती प्रदश म बस गये और आगरा तथा अगराहा का राजधाना बना कर राज्य करने लग। उनका राज्य गङ्गा से हिमालय तक विस्तृत था तथा पश्चिम में उसकी सीमाएँ मारवाड का छूती थीं<sup>१</sup>। उनके १८ रानियाँ थीं जिनसे ५४ पुत्र तथा १८ कन्याएँ हुई। वृद्धावस्था में उन्होंने निश्चय किया कि प्रत्येक रानी के साथ एक-एक यज्ञ करें। प्रत्येक यज्ञ एक-एक आचार्य के सुपुर्द था। इन्हीं १८ आचार्यों के नाम से उन १८ गात्रों के नाम पडे हैं जिनका प्रादुर्भाव राजा अप्रसेन से हुआ।

भारतन्दु बाबू ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि

१—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—अगरवालों की उत्पत्ति पृष्ठ ४।

यह परम्परा की जनश्रुति और प्राचीन लेखों से समझीत हुई है परन्तु इसका विशेष भाग भविष्यपुराण के अग्रवैश्य वशानु- उत्तर भाग मे के श्रीमहालक्ष्मी व्रत की कथा से कीर्तनम् लिया गया है<sup>१</sup>।” इस कथन से जान पड़ता है कि उनकी पुस्तक का आधार कई पौराणिक ग्रन्थ है। अभी हाल मे डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार ने अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास नामक एक पुस्तक लिखी है। उन्होने अपनी पुस्तक म दो प्राचीन पुस्तको का उल्लेख किया है जिनमे से एक उन्हे भारतेन्दु बाबू के निजी पुस्तकालय में हस्तलिखित पुस्तिका के कुछ पृष्ठों के रूप म मिली थी। उनका कहना है कि भारतेन्दुजी ने उस किसी प्राचीन हस्त लिखित पुस्तक स नकल कराया था। यह पुस्तक भविष्य पुराण के लक्ष्मी महात्म्य<sup>२</sup> नामक भाग का एक अध्याय कहा जाता है और इसका नाम अग्रवैश्य वशानुकीर्तनम् है। सम्भवत भारतेन्दुजी ने इसीके आधार पर अपनी पुस्तक लिखी थी। इस हस्तलिखित पुस्तक म अग्रसेन के सम्बन्ध म निम्न वृत्तान्त दिया है—

“राजा बल्लभ का पुत्र अग्रसेन हुआ। यह एक शक्तिशाली राजा था। देवताओं का राजा इन्द्र भी उसके बल वैभव से ईर्ष्या करता था। परिणाम यह हुआ कि इन्द्र और अग्रसेन मे लड़ाई शुरू हुई। इन्द्र घूलाक का राजा है इसलिए उसने अपने

१—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—अगरवालों की उत्पत्ति पृष्ठ १।

२—सत्यकेतु विद्यालङ्कार—अग्रवाल जातिके प्राचीन इतिहास पृष्ठ ३५।

शत्रु अप्रसेन के राज्य में वर्षा का होना बन्द कर दिया। दीर्घ काल तक अप्रसेन के राज्य में वर्षा नहीं हुई और इससे बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। पर इससे अप्रसेन निराश न हुआ। उसने महालक्ष्मी की पूजा आरम्भ की और उसे प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के तप किए। अन्त में अप्रसेन की भक्ति और पूजा से प्रसन्न होकर महालक्ष्मी उसके सम्मुख प्रगट हुईं और अपने भक्त का सम्बाधित करके बाली—“महाराज जा बर चाहा माग ला मैं तुम्हारी पूजा और भक्ति से सन्तुष्ट हूँ जो बर माँगोगे वही मैं पूण करूँगी।”

इस पर राजाने उत्तर दिया— यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं तो इन्द्र को मेरे बरश मे लाइए। लक्ष्मी ने स्वीकार किया और साथ ही अप्रसेन का कालपूर जाने का आदेश दिया। वहाँ नागा के राजा महीरथ की कन्या का स्वयंवर था। राजा अप्रसेन महालक्ष्मी के बरदान से बड़ा सन्तुष्ट हुआ और देवी को प्रणाम कर कालपूर के लिये रवाना हुआ। वहाँ बड़ा भारी उत्सव मनाया जा रहा था। दूर-दूर से आए हुए राजा और राजकुमार सभा में इकट्ठे थे। सब ऊँचे-ऊँचे राजसिंहासना पर बैठे थे। महालक्ष्मी की आज्ञा का पालन कर अप्रसेन वहाँ पहुँचा और नागकन्या का पाणिग्रहण करने में सफल हुआ। नागकन्या और अप्रसेन का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। इसके बाद वह अपनी राजधानी लौट आया।

यह सब समाचार इन्द्र ने नारद से सुना। राजा अप्रसेन

के उत्कर्ष को सुनकर इन्द्र बहुत बचकाया। उसने सन्धि का प्रस्ताव देकर नारद को अम्रसेन के दरबार में भेजा। इस प्रकार इन्द्र और अम्रसेन में सन्धि हुई पर राजा अम्रसेन पूर्णतया सन्तुष्ट न हुए। वे एक बार फिर यमुना तट पर गये और अपनी नव विवाहिता बधू नागकन्या के साथ तपस्या आरम्भ की। कुछ समय की घोर तपस्या के बाद देवी महालक्ष्मी फिर प्रगट हुई और अम्रसेन से बालीं—‘ हे राजा इन तपस्याओं को बन्द करा। तुम गृहस्थ हा गृहस्थाश्रम सब धर्मों में मुख्य है। सब धर्मों और आश्रमों के लाग गृहस्थ में ही आश्रय लेते हैं। इसलिए उचित नहीं कि तुम तपस्या करा। जैसा मैं कहती हूँ करा। इससे तुम्हें सब सुख वैभव प्राप्त हागा। तुम्हारे वश के लोग सदा सुखी और सन्तुष्ट रहेगे। तुम्हारा वश सब जाति वर्णों में सबसे मुख्य रहेगा। आज से लेकर तुम्हारा यह कुल तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध हागा और तुम्हारी यह प्रजा अम्रवशीया कहलायगी। मेरी पूजा तुम्हारे कुल में सदा स्थिर रहेगी और इसीलिए यह सदा वैभव पूर्ण ही रहेगा।’ इस प्रकार कहकर देवी महा लक्ष्मी अन्तर्ध्यान हा गयीं।

राजा अम्रसेन ने भी देवी महालक्ष्मी की आज्ञा पालन कर यमुना तट का त्याग दिया। वह स्थान जहाँ कि इन्द्र वश म किया गया था हरिद्वार से चौदह कास पच्छिम गङ्गा और यमुना के बीच स्थित था। वहाँ पर राजा अम्रसेन ने स्मरक बनवाया। उसने एक नवीन नगर की स्थापना की। इस नगर का

विस्तार १२ योजन था। वहाँ उसने अपनी ही जातिके बहुत से लोगों का बसाया और कराड़ों रुपया शहर बसाने में खर्च किया। नगर चार मुख्य सड़कों द्वारा विभक्त था। प्रत्येक सड़क के दोनों तरफ राज प्रासादों और ऊँची-ऊँची इमारतों की पंक्तियाँ थीं। नगर में बहुत से उद्यान और कमलों से भरे हुए तालाब थे। नगर के ठीक बीच में देवी लक्ष्मी का विशाल मन्दिर था। वहाँ रातदिन देवी महालक्ष्मी की पूजा हाती थी। राजा अम्रसेन ने १७॥ यज्ञ करके मधुसूदन को सन्तुष्ट किया। अट्टारहवें यज्ञ के बीच में एक बार घाड़े का माँस अकस्मात् इस प्रकार बोल उठा— हे राजन् ! माँस तथा मद्य के द्वारा वैकुण्ठ के जय करने का प्रयत्न मत करा। हे दयानिधि इस माँस मद्य से रहित जीव कभी पाप में लिप्त नहीं हाता ।” यह सुनकर राजा अम्रसेन का मद्य माँस से घृणा हा गई। यज्ञ का बीच में ही बन्द कर दिया और अट्टारहवाँ यज्ञ अपूण ही रह गया। इसलिए राजा अम्रसेन के १७॥ यज्ञों का उल्लेख किया गया है।

एक दिन जब राजा अम्रसेन पूजा पाठ में लगे थे, देवी महा लक्ष्मी प्रकट हुईं। उन्होंने उस सम्बाधन करके कहा— अब तुम बूढ़े हो गये हा। धर्म का अनुसरण कर अब तुम्हें अपना राज्य अपने पुत्र के सुपुर्द करता चाहिए। अम्रसेन न यही किया। अपने बड़े लड़के विभु को राजगरी पर बिठा कर वह स्वयं पत्नी के साथ बन का चले गये। दक्षिण में गोदावरी नदी के तट पर जहाँ ब्रह्मसर है वहाँ जाकर घोर तप किया और अन्त



में लक्ष्मी के आदेश से अपनी स्त्री के साथ स्वर्ग जाक गए<sup>१</sup> ।

अन्य किंवदन्तियों के अनुसार जिसे कविषय लेखकों ने अपनाया है, अम्रसेन का जन्म राजा महीधर की स्त्री भेदकुँवर से हुआ था। उनके जन्म के वर्ष में महीधर ने यमुना तट पर आगरा शहर बसाया। जब १२ वर्ष की अवस्था थी तभी सेन की एक टुकड़ी लेकर अम्रसेन तीर्थयात्रा का निकले। लौटते समय केतु नगरी के राजा सुन्दरसेन की पुत्री सुन्दरवती से विवाह किया। उनका दूसरा विवाह चम्पावती के राजा धनपाल की पुत्री धनपाला से हुआ। जब अम्रसेन की आयु ३९ वर्ष की हुई तो महीधर का दहान्त हो गया। उन्होंने राज्य अपने हाथ में लेकर आगरा का अपनी राजधानी बनाया और बाद में अगरोहा का बसाया<sup>२</sup> ।

अगराहा निर्माण के विषय में कहा जाता है कि महीधर के स्वगावासी हाने पर अम्रसेन उन्हें पिएडदान देने 'गवा' गये। वहाँ महीधर ने पिएडदान स्वीकार नहीं किया और कहा कि 'लाहागढ़' जाकर पिएडदान दो ता मेरी मुक्ति हागी। तदनुसार लोहागढ़ जाकर उन्होंने पिएडदान दिया। पिएडदान देकर वापस लौटते समय माग में एक जङ्गल पड़ा। उस जङ्गल में

१—सत्यकेतु विद्यालङ्कार—अम्रवाक जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ ८४ ८७ १५८ १८ ।

२—डा रामचन्द्र गुप्त—अम्रवंश पृष्ठ ३८ गुलाबचन्द एरस—अम्रवाक जाति का प्रामाणिक इतिहास पृष्ठ ३४ अम्रसेनजी का जीवन करिअ—पृष्ठ १४४

करीर के वृद्ध के आड़ में सिंहनी बच्चा जन रही थी। इससे सिंहनी के कार्य में विघ्न पड़ा। इसी समय अर्धोत्पन्न बच्चे ने निकल कर राजा के हाथी का एक थप्पड़ मारा। इस घटना से अग्रसेन को महान आश्चर्य हुआ और उन्होंने विद्वानों को बुलाकर कुल घटना सुनाई इस पर परिदृष्टों ने साच-विचार कर कहा कि यह भूमि बहुत बलवती है इसलिए यदि आप यहाँ पर नगर का निर्माण करें ता भगवान् विष्णु और महादेव आपका दर्शन देंगे और आपका वंश भी बहुत उन्नति करेगा। तदनुसार अग्रसेन ने वहाँ नगर निर्माण कराया<sup>१</sup>।

उसके बाद ही राजा जनक के स्वयंवर म जाते हुए परशुराम अग्राहा से गुजरे और अग्रसेन से उनकी कहा-सुनी हा गई, जिस पर परशुराम ने उन्हें निःसन्तान हाने का शाप दिया। उसके बाद अग्रसेन तप करने चले गये। वहाँ कौशिक मुनि ने कहा कि क्षत्रिय धर्म त्याग दो और वैश्य धर्म धारण करा ता सन्तान होगी। तदनुसार अग्रसेन ने क्षत्रिय धर्म त्यागकर वैश्य धर्म धारण किया।

ऊपर की किंवदन्ती से जान पड़ता है कि अग्रसेन ने १२ वर्ष

१—डा रामचन्द्र गुप्त—अग्रवंश पृष्ठ ४ गुलाबचन्द एरण—अग्रवाल जाति का प्रामाणिक इतिहास पृष्ठ १६ ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द—श्री विष्णु अग्रसेन वंशपुराण ( भूतखण्ड ) पृष्ठ १ अग्रसेनजी का जीवन चरित्र पृष्ठ १५-१६।

२—ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द—श्री विष्णु अग्रसेन वंशपुराण ( भूतखण्ड ) पृ १२ अग्रसेन जी का जीवन चरित्र पृ १७।

की अवस्था में सुन्दरवती से विवाह किया। कतिपय किंवदन्तियाँ ऐसी हैं जिनमें कहा गया है कि वे ५० वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहे<sup>१</sup>।

डाक्टर सत्यकेतु विद्यालकार ने अपनी पुस्तक में जिस दूसरी हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक का उल्लेख किया है उसका नाम "उरु चरितम्" है। यह पुस्तक उन्हें जखिल उरु चरितम् भारतवर्षीय वैश्य महासभा के प्रचारक प० मगलदेव से प्राप्त हुई थी। उसे उहोंने मैनपुरी जिले के किसी गाँव के किन्हीं लाला अवधविहारीलाल के पास विद्यमान मूल हस्तलिखित ग्रन्थ से नकल किया था<sup>२</sup>। इस पुस्तक में लिखा है कि— राजा अग्रसेन का भाई शूरसेन था। दोनों ने मिलकर गौड देश में अपना राज्य बसाया और गर्ग मुनि के आदेश से यज्ञ का निश्चय किया और १७ यज्ञ पूरा करके जब १८ बाँ यज्ञ करने लगे तो एक दिन हिंसा से घृणा हा गई और अधूरा यज्ञ बन्द कर दिया। इन यज्ञों से दोनों भाइयों की सन्तति के गात्र निश्चित हुए। इसके आगे अग्रसेन का कोई वृत्तान्त उरु चरितम्" में नहीं है। केवल शूरसेन का वृत्तान्त लिखा है। उसके अनुसार शूरसेन यात्रा करने निकला और लौटत हुए मथुरा रुका। वहाँ के चन्द्रवशी राजा वरु ने उसका समारोह के साथ स्वागत किया। उस राज्य की "द्वितीय अवस्था

१—अप्रवास वर्ष २ खण्ड २ संख्या ३ पृष्ठ ८ ।

२—सत्यकेतु विद्यालकार—अप्रवास जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ ३६।

देख कर शूरसेन का बड़ा दुःख हुआ। राजा ने उससे सन्धि बनकर अवस्था सुधारने का अनुरोध किया। अनुरोध स्वीकार कर शूरसेन राज्य प्रबन्ध करने लगा। फलस्वरूप कुछ दिनों में अवस्था बिल्कुल ठीक हो गयी। इससे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए मथुरा का दूसरा नाम शूरसेन रक्खा।<sup>१</sup>

संक्षेप में यह अप्रसेन के सम्बन्ध में प्रचलित किंवदन्तियाँ और कथाओं का सार है जिनका पुष्ट करने वाला कोई ऐतिहासिक प्रमाण अबतक प्राप्त नहीं है। इनके भ्रमात्मक धारणा आधार पर अप्रसेन नामक राजा स अप्रवाह जातिके विकास की जा धारणा लोगों में फैली है वह भ्रमात्मक सी जान पड़ती है। मुझे ही नहा प्राचीन इतिहास के अद्वितीय विद्वान् रायबहादुर महामहापाध्याय डा गौरीशंकर हीराचन्द्र आम्हा का भी यह मत मान्य नहीं है। इसलिये आगामी पृष्ठों में अप्रसेन के सम्बन्ध में अन्वेषण एवं विवेचन करना उचित होगा।

१—डा सत्यकेतु विशालद्वार—अप्रवाह जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ ६४ १५६-१८ ।

२—वेबक के १ सितम्बर १९४१ के पत्र के उत्तर में।

## दो प्राचीन ग्रन्थ

डा सत्यकेतु विद्यालङ्कार ने 'अप्रबास जासि का प्राचीन इतिहास नाम स जा पुस्तक लिखी है वह काफी विवचनात्मक एव स्राजपूर्ण समझी जाती है। इसमें आपने प्रामाणिकता की आवश्यकता 'उरु चरितम् और अप्रवैश्व वशानुकीतनम् नामक दो हस्तलिखित पुस्तिकाओं का प्राचीन एव प्रामाणिक मान कर अप्रसेन का अस्तित्व स्थापित किया है। इन पुस्तिकाओं में वरिष्ठ कथाभा का उल्लेख हम पूर्व प्रकरण में कर चुके हैं। डाक्टर साहब ने इन पुस्तिकाओं की प्रामाणिकता का कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया है, इसलिए आवश्यक जान पड़ता है कि अप्रसेन के विवेचन से पूर्व इन दोनों पुस्तिकाओं की प्रामाणिकता का विवेचन कर लिया जावे।

'उरु चरितम् मे किन्हीं 'उरु नामक राजा का वृत्तान्त लिखा है और उसे चन्द्रवशी बताया गया है। यह पुस्तक किसने लिखी, कब लिखी गयी आदि बातों का कुछ पता नहीं है, उरु चरितम् अतएव इसकी प्राचीनता का निर्णय करना बहुत कठिन है। पुस्तक की भाषा देखाकर डा० सत्य

केतुजी को स्वयं ही उसकी प्राचीनता पर सन्देह है।<sup>१</sup> अस्तु हम इस पुस्तक में वर्णित कथा के आधार पर इसकी प्रामाणिकता पर विचार करेंगे।

पुस्तक का उद्देश्य उरु का चरित्र वर्णन है इसलिए आवश्यक है कि 'उरु का पौराणिक अस्तित्व देखा जाय। क्योंकि चन्द्रवंश पुराण का एक प्रमुख वंश है और उरु की पौराणिकता उसमें उसकी विस्तृत वंशावली दी हुई है। दुःख है कि उरु नामक किसी भी राजा का पता पुराणों में नहीं है जिसका सम्बन्ध चन्द्रवंश से ज्ञात हाता हा। चन्द्रवंश में 'उरु' का नाम न हाना उसके अस्तित्व को सदिग्ध कर देता है।

'उरु चरितम्' में एक स्थान पर लिखा है कि 'उरु ने शूरसेन (अग्रसेन के भाई) के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए मथुरा का दूसरा नाम शूरसेन रक्खा।<sup>२</sup> डा० शूरसेन सत्यकेतुजी स्वयं इस बात पर विश्वास करने में सक्षम करते हैं, फिर भी कल्पना करते हैं कि हो सकता है कि शूरसेन ने अपने नाम से शौरसेन गण की स्थापना की हा और यही गण शूरसेन वैश्यो के रूप में परिवर्तित हा गय हों।<sup>३</sup> जान पड़ता है कि डाक्टर साहब ऐसी कल्पना करत

१—सत्यकेतु विद्यालङ्कार—अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ ३७।

२—वही पृष्ठ २८।

३—वही पृष्ठ २१।

समय इस बात को भूल गये कि रामायण पुराण आदि ग्रन्थ ग्रन्थों के अनुसार रामचन्द्र के भाई शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम से मथुरा का नाम शूरसेन पड़ा था ।<sup>१</sup> ऐसी अवस्था में 'उरु चरितम्' कथित शूरसेन के नाम से मथुरा का नाम शूरसेन हाने और शूरसेन गण की कल्पना असङ्गत एव अनुपयुक्त जान पड़ती है ।

'उरु चरितम्' में लिखा है कि अग्रसेन ने अपने निवास के लिए गौड़ देश को निश्चित किया जा हिमालय से संवृत है और गङ्गा जमुना नदियाँ इसमें बहती हैं ।<sup>२</sup> इसके

गौड़ देश अनुसार गौड़ प्रदेश की स्थिति सहारनपूर—  
हरद्वार के आसपास होनी चाहिए । इस कथन

का आधार मान कर अगरोहे से इस प्रदेश का सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए डाक्टर सत्यकेतुजी गौड़ की स्थिति पश्चिमी संयुक्त-प्रान्त और पूर्वी पञ्जाब अर्थात् वर्तमान मेरठ और अम्बाला की कमिश्नरी बताते हैं । किन्तु पुराणों के अनुसार प्राचीन काल में गौड़ उत्तर-काशल ( अयाध्या प्रान्त ) का कहते थे और उसकी राजधानी श्रावस्ती थी ।<sup>३</sup> गोंडा या गोंदा' नामक जिला इस कथन को पुष्ट करता है । इसके अनुसार गौड़ दश गङ्गा-जमुना के बीच तो

१—जयचन्द विद्यालङ्कार—भारतीय इतिहास की रूपरेखा भाग १ पृष्ठ १५७ ।

२—सत्यकेतु विद्यालङ्कार—अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ १६८ ।

३—कूर्मपुराण १ २ ; लिंगपुराण १ २ ( इस सूत्रों के लिए लोकक डा ए एस आस्तेकर ( काशी विश्वविद्यालय ) का आभारी है ) ।

नहीं है किन्तु हिमालय से सञ्चृत अवश्य है। इसके अनुसार भग-  
रक्षा का स्थान पञ्जाब में न हाकर पूर्वी युक्तप्रान्त में गोंडा अथवा  
उसके आसपास के किसी जिले में कहीं होना चाहिए। किन्तु  
उसका इस गौड़ देश के साथ कोई साम्य नहीं हो सकता। अपने  
कथन की पुष्टि में डॉक्टर सत्यकेतु का अनुमान है कि पच्छिमी  
यू० पी० तथा पूर्वी पञ्जाब में जा ब्राह्मण पाये जाते हैं वे गौड़ कहाते  
हैं इस कारण इस प्रदेश का नाम गौड़ है।<sup>१</sup> किन्तु अबतक गौड़ों  
के मूल निवास का पञ्जाब में हाने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण  
प्राप्य नहीं है। सर जाज कैम्पबेल ने 'घग्घर' से गौड़ शब्द के  
विकास की कल्पना की है। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण बताते हैं  
कि 'घग्घर' का प्राचीन नाम दृषद्बती था। इससे भी उसका पता  
नहीं लगता। यदि गौड़ ब्राह्मणों के वर्तमान निवास के बल पर  
पञ्जाब में गौड़ की कल्पना की जाती है तो यह भी दृष्टि में रखना  
होगा कि कायस्थों का एक बड़ा भाग जो गौड़ कायस्थ' के नाम  
से प्रसिद्ध है आजमगढ़ गारखपुर और बनारस के आसपास  
निवास करता है, उसका हम क्यों न गौड़ कल्पना करें? डाक्टर  
आस्तेकर का कथन है कि 'पचगौड़ ब्राह्मण' शब्द से अनुमान हाता  
है कि वे लोग युक्तप्रान्त में ही बिखरे थे और यहीं से इधर उधर

१—सत्यकेतु विद्यालंकार अप्रवासक जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ २ ६  
प्रस्तुत पुस्तक के मूल पाण्डुलिपि पर नोट।

२—सर जार्ज कैम्प बेल्ज—एथनासोमी आफ इण्डिया।



कैले । ऐसी अवस्था में डाक्टर सत्यकेतु के कल्पना की संगति नहीं बैठती ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'उरु चरितम्' के लेखक को वास्तविकता का तनिक भी ज्ञान नहीं है उसने कुछ सुनी सुनाई बातों का लेकर कल्पना के बल पर सारे कथा की सृष्टि की है । उसके आधार का हम प्रामाणिक नहीं मान सकते । वह केवल सर्व-साधारण-कथित अनुश्रुतियों का सकलन मात्र है । उसका मूल्य अग्रवाल जाति सम्बन्धी कही जाने वाली किसी भी साधारण किंवदन्ती से अधिक नहीं आँका जा सकता ।

इसी प्रकार का ग्रन्थ 'अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम्' भी है । उसकी मूल प्रति के अन्त में लिखा है—'इति श्री भविष्यपुराणे लक्ष्मी महात्मे केदारखण्डे अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम् षाडशाऽध्यायः' ।<sup>१</sup> इससे ज्ञात होता है कि वह भविष्य पुराण के लक्ष्मी महात्म्य का एक अंश है । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने अग्रवैश्य वंशानु 'अगरवालो की उत्पत्ति' की भूमिका में लिखा कि 'इसका विशेष भाग भविष्य पुराण के श्रीमहालक्ष्मी कथा से लिया गया है' ।<sup>२</sup> सम्भवत उनका सकेत इसी पुस्तक की ओर है क्योंकि इस पुस्तक की प्रति डा सत्यकेतु का भारत-दु बाबू के मकान से ही प्राप्त

१—डा ए एस वास्तेकर-लेखक के नाम पत्र ता १९-२ १९४ ।

२—सत्यकेतु विद्यालकार-अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ १५ ।

३—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—अग्रवालों की उत्पत्ति पृष्ठ १ ।

हुई है तथा अबतक इस पुस्तक की कोई भी दूसरी प्रति अन्वय्य प्राप्य नहीं है।

कितने ही लोगों ने भारतेन्दु बाबू की भूमिका पढ़कर भविष्य पुराण की छान बीन की पर उसमें उपयुक्त अश का कहीं पता नहीं लगा। श्री विष्णु अग्रसेन बश पुराणकार भविष्य पुराण ने लिखा है कि उसने एक भविष्य पुराण की मुद्रित और कई एक लिखित प्रतियाँ दखी पर उसमें अग्रवालों के विषय में कुछ नहीं है।<sup>१</sup> मैंने भी भविष्य पुराण की कई प्रतियों की छानबीन की पर मुझे उसमें अग्रसेन या अग्रवाल जाति सम्बन्धी एक भी शब्द नहीं मिला। इस सम्बन्ध में डाक्टर सत्यकेतुजी का समाधान है कि अग्रवैश्य वशानुकीत नम् या 'महालक्ष्मी व्रत कथा' भविष्य पुराण नाम स जा पुराण मिलता है उसका अग नहीं है सस्कृत में सैकड़ों इस प्रकार की पुस्तिकाएँ मिलती हैं जिनकी भूमिका में उन्हें भविष्य पुराण या भविष्योत्तर पुराण का अश हाना लिखा जाता है। भविष्य पुराण भविष्योत्तर पुराण तथा उनके खण्ड ग्रन्थ सब अलग अलग हैं। इन खण्ड ग्रन्थों में से कुछ १३ वीं व १२ वीं सदी तक पुराने हैं। इन सबका आनुश्रुतिक मूल्य पुराणों के सदृश ही है।<sup>२</sup> यदि यह कथन मान्य मान लिया जाव ता भी विचार

१—ब्रह्मबारी ब्रह्मानन्द-श्रीविष्णु अग्रसेन बशपुराण [जीर्णोद्धार खण्ड] पृष्ठ २८।

२—सत्यकेतु विद्यालंकार-प्रस्तुत पुस्तक के मूल पाण्डुलिपि पर नोट।

णीय है कि श्री महालक्ष्मी व्रत कथा नाम से कई पुस्तिकाएँ छप कर प्रकाशित हुई हैं और इस नाम की अनेक हस्तलिखित पुस्तकें काशी के सरस्वती पुस्तकालय मद्रास और पूना के संस्कृत पुस्तकालयों तथा लन्दन के इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में विद्यमान हैं पर उनमें से किसी में भी इस पुस्तिका अथवा उसके किसी अंश या अग्रवाल वैश्यों के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। ऐसी अवस्था में अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम् को इस अकेली प्रति पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ?

संस्कृत साहित्य और दर्शन के अद्वितीय विद्वान् डाक्टर भगवान्दासजी का कथन है कि अग्रवाल जाति के सम्बन्ध में किसी पुराण में कुछ भी नहीं है।<sup>१</sup> साथ ही कई डा. भगवानदास पुराण ऐसे हैं जिनके आदि अन्त का ठीक पता का मत नहीं चलता—जैसे पद्म स्कन्द भविष्य आदि। इससे यह सुविधा है कि जब किसी नई बात के लिए विशेष प्रमाण आदि की आवश्यकता होती है तो ढँढने खाजने से इससे कुछ न कुछ अपूर्व अध्याय चतुर (कार्यकुशल) पंडितजन का अपने घर में ही मिल जाते हैं।<sup>२</sup> इस महान् विद्वान् की इस सम्मति के बाद हम ता समझते हैं कि अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम् के प्रक्षिप्त होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। वह भी किसी ऐसे

१—डाक्टर भगवान्दास-लेखक के नाम और तिथि १२ १० १६६६ का पत्र।

२—डाक्टर भगवान्दास-सम्बन्ध [ प्रथम संस्करण ] पृ २ ७।

ही कार्यकुशल पंडितजन के घर से मिला हुआ अपूर्व अध्याय है। किन्तु डाक्टर सत्यकेतु का विश्वास है कि वह ऐसी अनुश्रुति के आधार पर लिखा गई है जिसकी कल्पना और निर्माण कोई काय-कुशल (चतुर) पंडित जन नहीं कर सकता।<sup>१</sup> आपकी सम्मति में दानों ग्रन्थ (उरु चरितम् और अप्रवैश्य वशानुकीर्तनम्) वैश्यकाल की प्राचीन ऐतिहासिक अनुश्रुति पर धाम्रित हैं और इनका उपयोग अप्रवाल इतिहास के लिए अवश्य किया जा सकता है।<sup>२</sup> साथ ही आप इस बात का भी स्वाकार करते हैं कि “इनका मूल्य किसी अनुश्रुति से अधिक नहीं है।

अप्रवैश्य वशानुकीर्तनम् की प्रति पर लिखे जाने की तिथि सवत् १९११ चैत्र मास की द्वादशी गुरुवार दी हुई है और उरु चरितम् पर तिथि का पता नहीं है। अप्रवैश्य प्रमाणिकता वशानुकीर्तनम् का जा प्रति उपलब्ध है उस का अभाव लिख हुए एक शताब्दा भी नहीं जाती। जा तिथि दी गयी है उसमें पक्ष का निर्देश नहीं है और न लेखक या उसके नकल करने वाले का ही कुछ पता है। प्राचीन ग्रन्थों में साधारणतया इस प्रकार की भूल नहीं हुआ करती। यदि उस प्रति को जिससे वर्तमान प्रतिलिपि की गई है, मूल कहें तो सम्भवत अनुचित न हागा। ऐसी अवस्था में नि सकाच अनुमान किया जा सकता है कि किसी कायकुशल

१—सत्यकेतु विद्यालंकार—अस्तुत पुस्तक के मूल पाण्डुलिपि पर नोट।

२—सत्यकेतु विद्यालंकार—अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास पृ १८।

चतुर पंडित ने प्रचलित अनुश्रुतियों का ही पौराणिक रूप दे दिया है। उसमें कोई ऐसी बात नहीं जान पड़ती जा कल्पना में न आ सके। इसे १२ वीं या १३ वीं शताब्दी पूर्व ले जाने के लिए कोई भी साधन नहीं है। इसलिए उसे आँख मँदकर प्रमाण नहीं मान सकते और न उसे आधुनिक छपी हुई पुस्तकों में वर्णित किंवदन्तियों से अधिक महत्त्व ही दे सकते हैं। उसके तथ्यों की छानबीन आवश्यक है।

---

## अग्रसेन के पूर्वज

प्राचान युगीन भारत का इतिहास पुराणों में बहुत कुछ सुरक्षित पाया जाता है। यद्यपि पुराण ग्रन्थों में बहुत कुछ अत्युक्तिपूर्ण कथन पाये जाते हैं जिन्हें अमन्त इतिहास नहीं कह सकते फिर भी स्मिथ पार्जीटर आदि ऐतिहासिकों का स्पष्ट मत है कि पुराणों को ध्यान पूर्वक पढ़ने पुराणों का महत्त्व पर उनमें बहुत सी इतिहास की बहुमूल्य सामग्री मिल सकती है। उसमें समस्त प्राचीन राज वंशों की वशावली पूरी पीढ़ियों तक विस्तृत रूप में वर्णित है। हमारे यहाँ राजवंश की वशावलियों पर सदैव से ही बड़ा ध्यान रहा है इसलिए पौराणिक राजवंशों की दृढ़ता मानी जा सकता है।<sup>१</sup> पूर्वोक्त किंवदन्तियों के अनुसार अग्रसेन एक प्राचीन एवं प्रख्यात शासक कहे जाते हैं। उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाता है उसे प्रामाणिक मानने के पूर्व पुराणों के आधार पर

---

१—मिश्रबन्धु-भारतवर्ष का इतिहास (प्रथम खण्ड) भूमिका (प्रथम संस्करण) पृ १४।

उनके पूर्वजों की कथित वशावलियों की समीक्षा कर लेना उचित होगा।

डाक्टर सत्यकेतु ने 'रु चरितम्' के आधार पर अप्रसेन के पूर्वजों का सुप्रसिद्ध पौराणिक वैशालक वंशीय बताया है।<sup>१</sup>

उनके कथनानुसार मनु' पुत्र नैष्ट' के नाभाग वैशालक वंश हुए। नाभाग के भलद्वन और भलन्द्वन के वात्सप्रिय हुए। वात्सप्रिय के माकील और प्राशु हुए। फिर माकील के वंश में अज्ञात पीढ़ियों के बाद धनपाल हुए। धनपाल के पारवर्ती जनो की जा वशावली डाक्टर सत्यकेतु ने दी है वैसी ही वशावली भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने भी अपनी पुस्तक में दी है और उसी का कुछ हेर फेर के साथ श्री डब्लू क्रूक प हीरालाल शास्त्री शालग्राम कवि और ब्राह्मणात्पत्ति मार्तण्ड के लेखक ने अपनाया है इन पुस्तकों में धनपाल के पूर्ववर्तियों का कहीं पता नहीं है।

'रु चरितम्' के अनुसार धनपाल के ८ सन्तानें हुईं जिनके नाम क्रम से शिव नल नन्द कुमुद अनल वल्लभ कुन्द और शेखर थे।<sup>२</sup> भारतेन्दु बाबू ने अपनी पुस्तक में कुमुद के स्थान पर मुकुन्द और अनल के नाम पर अनिल लिखा है।<sup>३</sup> लेकिन

१—सत्यकेतु विद्यालंकार—अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास प १ १।

२—वही पृष्ठ १ २ १ ३।

३—वही प १ ३।

४—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—अगरवालों की उत्पत्ति पृष्ठ १।

‘ब्राह्मणात्पत्ति मारुण्ड’ में अनल और अनिल दानों नाम हैं नल का नाम नहीं है ।<sup>१</sup> क्रूक साहब ने शेखर के स्थान पर शुक्र का उल्लेख किया है ।<sup>२</sup>

उक्त चरितम् के अनुसार शिव से आगे की वशावली इस प्रकार है —

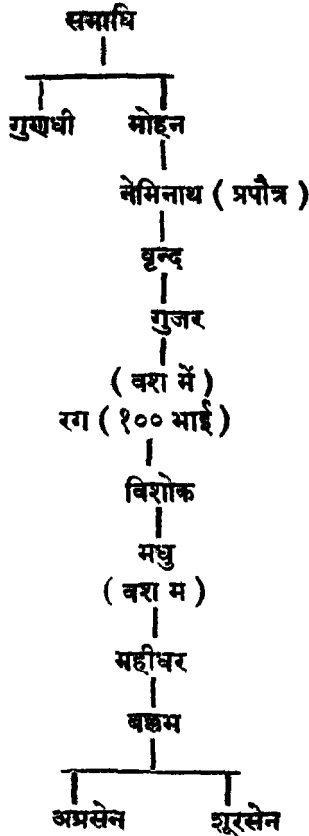
शिव  
|  
आनन्द  
|  
अय  
|  
विश्य  
|  
( वशा में )  
सुदर्शन  
|  
धुरधर  
|  
नन्दिवधन  
|  
अशाक  
|

१—श्री विष्णु अप्रसेन वंश पुराण (भूतखण्ड) पृष्ठ ३ ।

२—डब्लू क्रूक—ट्राइब्स ऐण्ड कास्टस आफ एन डब्लू पी ऐण्ड अवध’ भाग १ पृष्ठ १४ ।

३ सत्यकेतु विद्यालकार—अप्रवाह जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ १८-१८७ परिशिष्ट ७ ।



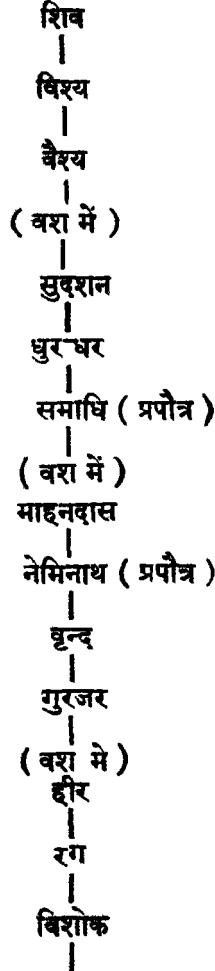


भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र <sup>१</sup> और परिद्धत हीरालाल शास्त्री <sup>२</sup>

१—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—अक्षरवालों की उत्पत्ति पृष्ठ १ ।

२—हीरालाल शास्त्री—अप्रमाल वैद्योत्कर्ष पृष्ठ १३ ।

ने अपनी पुस्तकों में शिव से आगे निम्न वंशावली दी है —

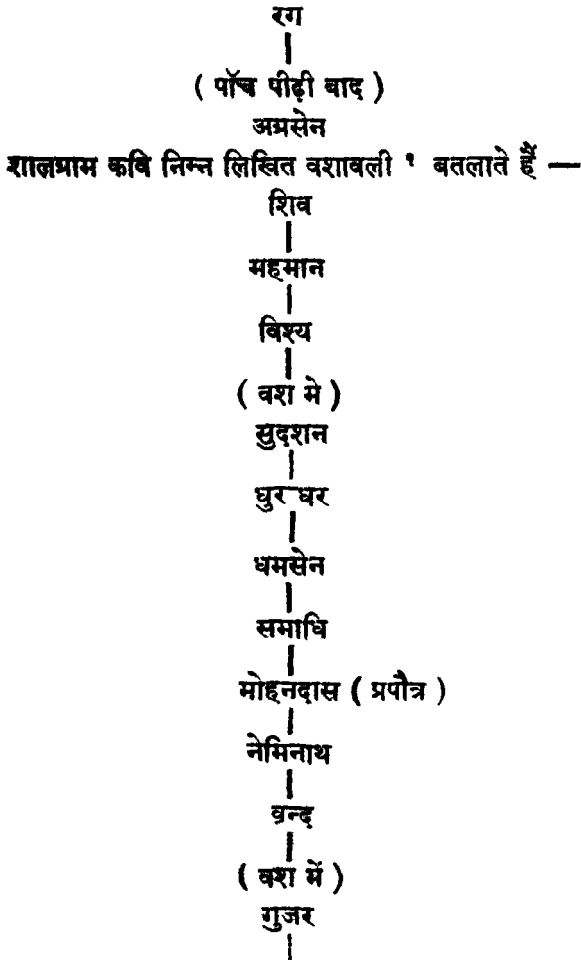


मधु  
|  
महीघर  
|  
बल्लभ  
|  
अम्र

श्री डब्लू० क्रूक लिखित बशाबली १ इस प्रकार है —

शिव  
|  
विष्णुराज  
|  
सुदशन  
|  
धुर-घर  
|  
समाधि  
|  
माहनदास  
|  
नेमिनाथ  
|  
वृन्द  
|  
गुर्जर  
|  
हरिहर  
|

१—डब्लू क्रूक— ट्राइन्स ऐण्ड कास्टस आफ एन डब्लू पी  
ऐण्ड अवध भाग १ प १४ ।




---

१—शालग्राम कवि—अप्रवाक वशा पृष्ठ १ ।

( वंश मे )

हीरक

|

रंग

|

बिश्राक

|

मधु

|

महीधर

|

बल्लभ

|

अम्रनाथ

जहाँ उपयुक्त लेखकों ने शिव के वंशजों की वंशावली दकर बल्लभ के पुत्र को अम्रसेन अम्रनाथ या अम्र बताया है वहीं ब्राह्मणापत्ति मातरण्ड के लेखक ने वंशावली की लम्बी तालिका की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं समझी और अम्र को शिव के भाई बल्लभ की सन्तान बता कर छुट्टी पा ली है ।<sup>१</sup> इस प्रकार उपयुक्त वंशावलियों के नाम एक दूसरे से भिन्न हैं । डा० सत्यकेतु के मतानुसार अम्रसेन सम्बन्धी जा दो प्राचीन पुस्तकें प्राप्य हैं, उनके प्रामाणिकता के अभाव की विवेचना पिछले प्रकरण में की जा चुकी है । फिर भी यदि थोड़ी देर के लिए उनका कुछ मूल्य समझ लिया जाय ता हम देखते हैं कि उन दोनों में भी आपस में कई

१—श्रीविष्णु अम्रसेन वंश पुराण [ भूतर्षण ] पृष्ठ ३ ।

स्थानों पर घोर मतभेद है और उन दानों से भिन्न कई नाम अन्य तीन लेखकों की वंशावलियों में हैं जिनके कथन के आधार अज्ञात हैं।

ये वंशावलियाँ भलन्दन पुत्र वात्सप्रिय के पुत्र माकील के वंशज धनपाल की सतान अग्रसेन या अग्रवालों का बताती हैं किन्तु 'वर्ण विवेक चन्द्रिका' में लिखा है कि ब्रह्मा के उपदेश से भलन्दर ( भलन्दन ) हुए। उनका स्त्री मरुत्वती थी। उससे वत्स प्रीति ( वात्सप्रिय ) उत्पन्न हुए। उसके प्राशु नामक पुत्र हुआ जिसके माद प्रमाद मादन प्रमोदन बाल और शकुकरण छ पुत्र हुए। प्रमादन निस्सन्तान था उसने अपनी स्त्री चन्द्रसेना के साथ बद्रिकाश्रम में तप किया। शिवजी ने उसका वर दिया और यज्ञ करने पर अमिकुण्ड से अग्रवाल खत्री और रौनियार नामक तीन पुत्र हुए।<sup>१</sup> इस कथन के अनुसार अग्रवाल माकील के वंशज न हाकर उसके भाई प्राशु के वंशज हुए। डाक्टर सत्यकेतु ने अपनी पुस्तक में भलन्दन पुत्र वात्सप्रिय के दा पुत्र माकील और प्राशु का उल्लेख किया है।<sup>२</sup>

जहाँ मत वैभिन्न्य के साथ-साथ उपयुक्त लेखक समुदाय अग्र सेन को वात्सप्रिय के दा भिन्न शाखाओ से बताते हैं वहीं अनेक लेखक एव किंवदन्तियाँ उन्हें सूयवशी बताने की चेष्टा करती हैं

१—वर्ण विवेक चन्द्रिका पृष्ठ ११; ज्वालाप्रसाद मिश्र-जाति-शास्त्र, पृष्ठ २६६-७ ।

२—सत्यकेतु विद्यालंकार-अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ १ १-१ ३।

और उनका सम्बन्ध इक्ष्वाकु वंश से जोड़ कर राजा मान्धाता का वंशज बताती हैं। पुराणों में मान्धाता के सूर्यवंश पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचकुन्द नामक तीन सन्तान कही गई हैं। इनमें अम्बरीष के वंश में अप्रसेन हुए ऐसा कहा जाता है।

श्रीयुत नन्दकिशारजी अग्रवाल चौधरा, अप्रसेन के पूर्वजों को इस प्रकार बताते हैं।<sup>१</sup>

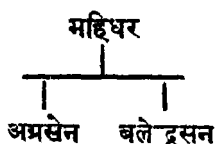
अम्बरीष  
|  
धुमारिख  
|  
जमनारिख  
|  
भक  
|  
स्वत  
|  
मोहान  
|  
जलनगन्धा  
|  
तीमरिख  
|  
अप्रसेन  
|  
घर्मसेन

१—श्री विष्णु अप्रसेन वंशपुराण ( जीर्णोद्धार खंड ) पृष्ठ २४।

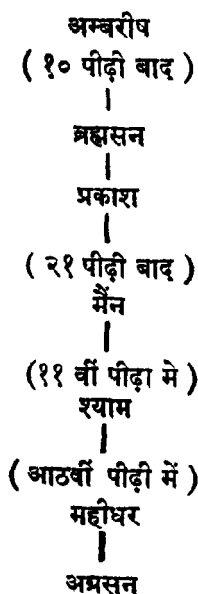
|  
 अमरसेन  
 |  
 सदारिख  
 |  
 सलमरिख  
 |  
 जानरिख  
 |  
 अनेनरिख  
 |  
 सङ्गमरिख  
 |  
 करोसरिख  
 |  
 वृहत  
 |  
 सिनरिख  
 |  
 मौनदन्त  
 |  
 मध्यमा सगर  
 |  
 करमदरिख  
 |  
 करोसियारिख  
 |  
 महरिख  
 |  
 हंसकारप



ब्रह्मरिख  
—  
प्रकारा  
—  
नाश  
—  
मीररिख  
—  
वीरधर  
—  
अहमन्तरिख  
—  
श्यामदत्त  
—  
सौभाग्यदत्त  
—  
चूड़ामणि  
—  
पूरनाखद  
—  
भईलिंग  
—  
गुजरादरिख  
—  
हरिदाज  
—  
धिराज  
—  
अङ्गदिवी  
—



श्री विष्णु अप्रसेनवश पुराण म कृष्ण कवि वर्णित एक बशावली दी हुई है उसमें भी अप्रसेन का सम्बन्ध सूय-वशी मान्धाता पुत्र अम्बरीष से बताया गया है ।<sup>१</sup>



इन्दौर से श्री लक्ष्मीराम पुत्र श्री शिवप्रताप ने 'राजा अप्रसेन

---

१ श्री विष्णु अप्रसेनवश पुराण ( भूतखण्ड ) प ७ ।

का जीवन चरित्र' नाम की एक पुस्तिका प्रकाशित की है। इसके सम्बन्ध में उनका कहना है कि अगराहे के अग्रपुराण निकट स्थित जसपुरग्राम के भट्ट घनश्याम और तुलाराम के पास अग्रपुराण नामक एक प्राचीन ग्रन्थ है। उसी ग्रन्थ के आधार पर पुस्तक लिखी गई है।<sup>१</sup> इस पुस्तक में भी उपर्युक्त वशावली दी गई है।

चौथी वशावली जिसमें अग्रसेन को अम्बरीष का वंशज कहा गया है, एक भाट कथित है। इस वशावली के नाम बड़ ही विकृत रूप में दिए गए हैं। इसमें अमरीष करके दिया हुआ नाम सम्भवतः अम्बरीष का ही रूपान्तर है। उसके अनुसार वशावली इस प्रकार है

अमरिष  
|  
धुमारिष  
|  
पमारिष  
|  
ब्रह्मारिष  
|  
प्रकाश  
|  
घनपाल  
|

१—राजा अग्रसेन का जीवन चरित्र पृष्ठ १३-१४।

२—श्री विष्णु अग्रसेनवंश पुराण (शीर्षोद्धार खण्ड) पृ १६।

रतनपति

|

महीधर

|

अप्रसेन

डा० रामचन्द्र गुप्त ने एक और वशावली दी है । \*

माघाता

|

अम्बरीष

|

( वश में )

ब्रह्मर्षि

|

प्रकाश

|

ताश

|

मकर

|

कन्द

|

माहाल

|

जालध

|

नग

|

केवल

|

ब्रह्मा  
|  
ब्रह्म  
|  
मैत्र  
|  
मध्यमा  
|  
करम्भ  
|  
भूर  
|  
लोकेश  
|  
गहदी  
|  
सूरज  
|  
समथ  
|  
सुतज  
|  
नहपग  
|  
अजमन्त  
|  
श्याम  
|  
सुभग  
|

बीमाकर  
 |  
 मनीमोहन  
 |  
 पूरणकर  
 |  
 बहीलाक  
 |  
 चूड़ाभणि  
 |  
 गजराध  
 |  
 रंगाधि  
 |  
 स्वमेपामटल  
 |  
 मधु  
 |  
 श्राद्धि  
 |  
 अशोध  
 |  
 पजस  
 |  
 डडल  
 |  
 अङ्गसीस  
 |  
 भमानसीस  
 |  
 महीघर

अप्रसेन मनुष्वज हेमत्सु सिदिसेन, मुकुन्दी तिलाघर सुरप्रसन्न

मुखतसर हालात अप्रसेन के लेखक ने अप्रसेन की पूर्वज परम्परा देत हुए जा वशाबली दी है उसमें उसने अम्बरीष की सन्तान के नाम निम्नलिखित रूप में गिनाये हैं ।<sup>१</sup>

धूमाक यमरक्षक सदारक्षक सुलभरक्षक जीवन-रक्षक अनन्त रक्षक सुमगल रक्षक काष रक्षक, कमरक्षक मर्णरक्ष, सहस्ररक्ष ब्रह्मरक्ष प्रकाश, नाश, मयकुर साहान चलगद निम्भ परमसेन धर्मसेन अमरसेन महिमन्त सन्तमान मधुमान कषमड मयूर भ्रमर रहमत श्याम, सामाग चूणामन पूर्णकन्द विहीलाक गजराज, हरिद्र दधिराज रणगाधी महीधर अप्रसेन ।

इन दा प्रकार के प्रसिद्ध पौराणिक सूय और चन्द्र वशों से सम्बन्ध जाड़ने वाली वशावलियों से भिन्न हिसार जिले के सेटिल

अमीचन्द की  
वंशावलियाँ

मेन्ट आफिसर श्री अमीचन्द ने दो वशाबली अपनी रिपोर्टों में दिया है जिसे श्री विष्णु अप्रसेनवशापुराणकार ने अपनी पुस्तक में सकलित किया है । एक के अनुसार उसने अप्रसेन को सूर्यवशी बताकर कि हीं राजा वासुदेव से सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा की है ।

१—अप्रवाल वर्ष ४ खण्ड १ अङ्क ३ पृष्ठ ४२१ बालचन्द मोदी—  
अप्रवाल इतिहास-परिचय पृष्ठ २ ।

वह वशावली<sup>१</sup> इस प्रकार है —

वासुदेव  
 |  
 सुइसनर  
 |  
 सुधमदेव  
 |  
 कृष्णवर्मा  
 |  
 वीरवर्मा  
 |  
 रगुधीरवर्मा  
 |  
 जगतवर्मा  
 |  
 नरद्रवर्मा  
 |  
 रुद्रवर्मा  
 |  
 कृतवर्मा  
 |  
 आशाजीत  
 |  
 सुमरुदेव  
 |  
 अप्र

श्री अभीचन्द ने जा दूसरी वशावली दी है वह किन्हीं प  
 किसनसहाय दादरीवाले के खुलासा तबारीख के आधार पर है।

१—श्री विष्णु अप्रसेनवंश पुराण ( भूतसूक्त ) पृष्ठ ६४।



उसके अनुसार ब्रह्मा से चित्रगुप्त हुए। उनके वंश में रघुरतन हुए। उन्होंने सूर्य की तपस्या की। उसके सदामान और सदामान के औषू हुए, जिसके वंश में अग्र हुए।<sup>१</sup>

श्री अमीचन्द्र प्रस्तुत दोनों वंशावलियों विचित्र हैं। पहले में सूर्यवशी राजा वासुदेव का उल्लेख है। इस नाम का कोई सूर्यवशी राजा पुराण में प्राप्य नहीं है। दूसरे में अप्रसेन को चित्रगुप्त का वंशज माना है। चित्रगुप्त के वंशज कायस्थ कहे जाते हैं पर इसके अनुसार अप्रवाल भी उनके वंशज हुए। इस प्रकार दानो वंशावलियों में से किसी का आर झोर नहीं है। अस्तु केवल वैशालक वंश और माघाता वंश सम्बद्ध वंशावलियों पर ही विचार करना उचित होगा। क्योंकि दानों ही वंश प्रख्यात पौराणिक वंश हैं।

पुराणों के अनुसार मनु के दस पुत्र और एक कन्या थी। प्राचीन राजवंशों का प्रादुर्भाव मनु की इन सन्तानों से माना गया है। उनके नाम इच्छ्वाकु, शर्वाति पौराणिक वंशवन्धी नाभाग नैट्ट, सुद्युम्न, नृग, निरिस्यन्ति, धृष्ट, करुष पृषध्र है। बड़ा लड़का इच्छ्वाकु, अयाध्या में राज करता था। उसके दस पुत्र हुए—विकुक्षिरशाद और नेमि। विकुक्षिरशाद से सूर्यवंश का विकास हुआ जिसमें माघाता पैदा हुए। दूसरे पुत्र नेमि से विदेह वंश चला जिसमें रामचन्द्र की पत्नी सीता का जन्म हुआ था। मनु पुत्र शर्वाति ने

१—श्रीविष्णु अप्रसेनवंश पुराण ( भूतलज्ज ) पृष्ठ ६१ ।

आनर्त ( कठियावाड़ द्वारिका ) में अपना राज्य स्थापित किया । नाभाग से रथीतर वंश का विकास हुआ । नैदृष्ट से सुप्रसिद्ध वैशालक वंश का आरम्भ हुआ जो इसके राजा विशाल के नाम पर प्रसिद्ध हुई । नैदृष्ट के पुत्र का नाम नाभाग था । 'मार्कण्डेय पुराण' के अनुसार उसने एक वैश्य कुमारी से विवाह कर लिया और स्वयं भी वैश्य होगया । उसका पुत्र भलनन्दन या भलन्दन हुआ । वह एक शक्तिशाली राजा था । उसका पुत्र वात्सप्रिय या वत्तप्रीत था । उसके बाद इस कुल में क्रम से प्राशु, प्रमति, खमित्र चाक्षुष विंशति रम्भ खनिनेत्र करधन वीक्षित मरुत्त नरिष्यन्त वम राज्यवधन सुधृत, नर केवल बिन्दुभान वेनवान बधु तृणविन्दु विशाल ( जिसके नाम पर इस वंश का नाम वैशालक और राजधाना का नाम वैशाली पड़ा जो बिहार में थी ) हेमचन्द, धूमाक्ष सयम सहदेव कृशान्व सोमदत्त सुमति और जन्मेजय हुए । <sup>१</sup>

पुराणों में इस वंश की केवल इतनी ही वंशावली लिखी है । किन्तु डा सत्यकेतु ने 'उरुचरितम्' की सहायता से इस वंश की एक नई शाखा का उल्लेख किया है । वे माकील वात्सप्रिय के दो पुत्रों का उल्लेख करते हैं माकील और प्राशु । <sup>२</sup> प्राशु की वंशावली का

१—विष्णुपुराण ४।१।१६ ६१ ।

२—सत्यकेतु विशालद्वार-अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ १ २ १ ३ परिशिष्ट ७ ।

उल्लेख ऊपर हो चुका है। माकील और उनके वंशजों का उल्लेख पुराणों में नहीं है। माकील प्राचीन वैदिक साहित्य एवं संस्कृत साहित्य के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं किन्तु कहीं भी उनका सम्बन्ध वैशालक वंश से नहीं जोड़ा गया है। यह सम्भव नहीं कि ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति का सम्बन्ध किसी राजवंश से हो और उसका उल्लेख पुराण में न हो। पुराणों में प्रायः सर्वत्र जहाँ कहीं भी किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का वर्णन आया है वहाँ उनकी सन्तति के नाम अवश्य दिये गए हैं, चाहे उनका कोई वर्णन न हो। ऐसी अवस्था में यह सम्भव नहीं कि माकील यदि वैशालक वंश के हात में उनका प्राणु के साथ उल्लेख न होता।

डाक्टर सत्यकेतु ने उरुचरितम् के वंशावली की विवेचना करते हुए उसे पौराणिक अनुश्रुति के अनुकूल बताया है और लिखा है कि 'उरुचरितम् में आप ब्रह्मा विवस्वान् मनु नेदिष्ट नामाग, भलन्दन और वात्सप्रिय के नाम पौराणिक वृत्तान्त के अनुकूल ही हैं। और आगे की विवेचना में जा कुछ कहा है उसका तात्पर्य यही है कि जब पूर्वोद्धिखित नाम पौराणिक वृत्तान्त के अनुकूल हैं तो उरुचरितम् में उत्तरोद्धिखित नाम भी अवश्य पौराणिक अथवा प्रामाणिक होंगे।' किसी पुस्तक में कुछ प्रसिद्ध एवं प्रामाणिक नाम हों तो उसके अन्य नाम भी प्रामाणिक होंगे ही, यह तक शायद ही किसी विद्वान की समझ में न्यायोचित जान पड़े।

१—सत्यकेतु विद्यालङ्कार—अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ १११५।

शब्द 'अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास' के विद्वान लेखक ने ब्रह्माण्ड पुराण अथवा मत्स्यपुराण में भलन्दन और वत्स के साथ माकील का नाम वैश्य प्रवरों में उल्लिखित पाकर ही उन्हें वैशालक वंशीय बनाने की चेष्टा की है।

माकील के बाद उरुचरितम् के आधार पर डा० सत्यकेतु धनपाल का उल्लेख करते हैं किन्तु इन दो व्यक्तियों के बीच में कितनी पीढ़ियों का अन्तर था इसका कुछ ज्ञान पौराणिक उल्लेख नहीं है। साथ ही ध्यान देने योग्य बात ता का अभाव यह है कि इस वंशावली के किसी राजा के सम्बन्ध में काइ बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती इस बात का डाक्टर सत्यकेतु भी मानते हैं।<sup>१</sup> रामायण महाभारत आदि में वैशालक वंश का वणन आया है पर जिस शाखा का उल्लेख डा सत्यकेतु ने किया है उसका उन ऐतिहासिक पुस्तकों में भी कहीं पता नहीं है। डाक्टर सत्यकेतु इस अभाव का समाधान यो करत हैं कि यह वंश वैश्यों का वंश था और पौराणिक साहित्य संकलनकर्ता ऐसे वंश का वणन करना अपनी प्रतिष्ठा से नीचे की बात समझते थे जा न वो ब्राह्मण ऋषियों का हा और न क्षत्रिय राजाओं का ही। प्रमाण में आप कहते हैं कि पौराणिक साहित्य में प्राचीन भारत के वार्ताशब्दापजीवि गणों का कहीं उल्लेख नहीं है और न

१— सत्यकेतु विद्यालकार अप्रवाल जातिका प्राचीन इतिहास पृष्ठ १७।

उसमें गुप्त वर्धन नाग आदि बौश्यों का वर्णन है । १

उपयुक्त बातें लिखते हुए डाक्टर साहब ने इस बात की उपेक्षा कर दी है कि प्रायः पुराणकारों ने किसी ईसा-पश्चात् के शासक का उल्लेख किया ही नहीं है इस कारण यदि उन्हें पुराणों में गुप्त और वर्धन वंश का वर्णन न मिले तो आश्चर्य ही क्या है ? रही नागवंश की बात सा उसका तो स्पष्ट उल्लेख विष्णुपुराण में है । २ विष्णुपुराण विद्वत्जनों द्वारा बताये हुए पुराण-लक्षणों के अनुसार एक बहुत ही मान्य ग्रन्थ समझा जाता है । नागवंश का ही क्यों, उसमें ता शूद्र-जन्मा महापद्म के वंश का भी वर्णन बड़े विस्तार से दिया गया है । ३ ऐसी अवस्था में यह कल्पना नहीं की जा सकती कि पुराणकार एक ऐसे वंश की उपेक्षा कर देंगे जो शूद्र से उच्च है । हमारे कथन का समाधान करते हुए डाक्टर सत्यकेतुजी ने हमें अबगत किया है कि 'पुराणों में प्रायः मध्यदेश के राज्यों का इतिहास समर्पित है । पूव व पच्छिम के राज्यों का उल्लेख व वर्णन वहाँ प्रायः नहीं है । ४ हम डाक्टर साहब के इस कथन का स्वीकार करते हुए भी ध्यान दिलाना चाहते हैं कि किंवदन्तियों के अनुसार अप्रसेन का

१—सत्यकेतु विद्यालंकार—अप्रसेन आदि प्राचीन इतिहास पृष्ठ १ ७ ।

२—विष्णुपुराण ४।२।४।६-१६ ।

३—विष्णुपुराण ४।२।४।२ -२४ ।

४—सत्यकेतु विद्यालंकार—प्रस्तुत पुस्तक की मूल पाण्डु लिपि पर नोट ।

राज्य उत्तर में हिमालय पूव और दक्षिण में गंगा पच्छिम में यमुना से मारवाड़ तक बिस्तृत था। यह भाग प्राचीन सस्कृत साहित्य में वर्णित मध्यदेश की सीमा से बाहर नहीं कहा जा सकता। इसलिए इस कल्पना पर विशेष कहने की आवश्यकता नहीं।

इसस अधिक निकट का पौराणिक सम्बन्ध ता वण विवेक चन्द्रिका के लेखक ने जाड़ने की चेष्टा की है। अर्थात् उसने अग्रवाल जाति का सम्बन्ध प्राशु स स्थापित वर्ण विवेक चन्द्रिका किया है। भलन्दन के वंश स सम्बन्ध जाड़ने के लिए माकील की कल्पना की अपेक्षा यदि इस लेखक की तरह प्राशु से सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा की गई होती ता शायद अधिक सफलता मिल सकती लेकिन वण विवेक चन्द्रिका का लेखक भी स्वयं यहा आकर कल्पना के उलभन म पड़ गया है। उसने प्राशु के छ लड़कों का उल्लेख जिस रूप मे किया है वह पुराण मे वर्णित नामों से सबथा भिन्न अपने मन की खिचड़ी जान पड़ती है और उसके कथन का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

अब सूयवश की वंशावली पर दृष्टि डाली जाय ता पुराणों के अनुसार इच्छ्वाकु पुत्र विकुत्तिशशाद के वंशजों  
सूर्यवंश की वंशावली जा सूयवश के नाम से प्रख्यात है वह माघाता तक निम्न अनुसार है।<sup>१</sup>

इच्छाकु  
 |  
 विकुचि (उपनाम शशाद)  
 |  
 पुरजय (उपनाम कुकुस्थ)  
 |  
 अनेना  
 |  
 विष्टरशिव  
 |  
 चान्द्र  
 |  
 युवनाम्ब ( प्रथम )  
 |  
 आवस्त  
 |  
 बृहद्श्व  
 |  
 कुवलयाम्ब  
 |  
 दृढाम्ब  
 |  
 हर्यम्ब ( प्रथम )  
 |  
 निकुम्भ  
 |  
 अमिताम्ब  
 |  
 कुराम्ब  
 |  
 प्रसेनजित

युवनाश्र (द्वितीय)  
मान्धाता

जहाँ पुराणों में यह विश्वसनीय बशावली प्राप्य है वहीं श्री नन्दकिशोरजी अप्रवाल चौधरी ने उससे स्वतन्त्र अपना कल्पना इस प्रकार की है ।<sup>१</sup>

इच्छ्वाकु  
अनरन  
प्रथु  
त्रिशकु  
बिम्बगध  
जैदर  
जमनास  
शाची  
हृदिबिद्  
कावसयासर  
वरिधासर

१—श्री विष्णु अप्रसेनवंश पुराण (जीर्णोद्धार खण्ड) पृष्ठ २३ ।



हरजस  
 |  
 निकुम्भ  
 |  
 सहमासर  
 |  
 तरीसास्वत  
 |  
 करोरा  
 |  
 सिनीजित  
 |  
 घघमार  
 |  
 बुनयास  
 |  
 मान्धाता

हम देखते हैं कि इस वशावली में पौराणिक वशावली के दो तीन नामों के अतिरिक्त जा विकृत रूप में हैं, अन्य कोई नाम प्राप्य नहीं है। इसी प्रकार यदि हम अमरसेन का सूचवली बताने वाली वशावलियों का भी ध्यान पूर्वक परीक्षण करें तो ज्ञात होगा कि उन पाँचों वशावलियों में अम्बरीष, ऋषीधर और अमरसेन के अतिरिक्त कोई दूसरा नाम एक दूसरे से नहीं मिलता। इतना विषम भेद स्वयं बता देता है कि उन सारी वशावलियों का अस्तित्व केवल लेखकों की कल्पना में है। विष्णुपुराण में अम्बरीष के सतति के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि "अम्बरीष के युवनाथ नामक पुत्र हुआ। उसके शरीर हुआ

जिससे अंगिरा गोत्रीय हारीत गण हुए। इसके आगे पुराण मौन है। जब अम्बरीष के वंशजों के ब्राह्मण हाजाने की बात पुराण स्पष्ट स्वीकार करता है ता फिर समझ में नहीं आता कि किस आधार पर उनसे अग्रसेन का उद्भव जाडा जाता है ? इस प्रकार हमारा दृढ विश्वास है कि अग्रसेन से सम्बन्ध जाड़ी जाने वाली सारी वंशावलियाँ काल्पनिक हैं।

डाक्टर सत्यकेतु जी ने हमारे इस विवेचन पर अपने विचार प्रगट करत हुए लिखा है कि आपने इस अध्याय में अग्रवाल इतिहास के विविध लेखकों की दी हुई सब डा सत्यकेतु की वंशावलियाँ दे दी हैं। जहाँ तक मुझे ज्ञात है आपति इन पुस्तकों में अपनी वंशावली के लिय किसी आधार का चाहे वह किसी काय-कुशल परिष्ठतजन की मनगदन्त रचना ही क्यों न हा निर्देश नहीं किया गया है। अत इनका इतने विस्तार से इस इतिहास में उल्लेख करना तथा उन्हें ऐतिहासिक विवेचन का विषय बनाना कुछ विशेष युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं हाता।<sup>१</sup> २ इस कथन के सम्बन्ध में केवल इतना ही निवेदन पर्याप्त हागम कि उन लेखकों ने बिना किसी ज्ञान-बीन के बिना किसी काय कुशल परिष्ठत जन की अपेक्षा किए ही जब अग्रसेन के अस्तित्व का जनश्रुत किंवदन्तियों

१—विष्णुपुराण ४।३।२ ३।

२—सत्यकेतु विद्यालकार— प्रस्तुत पुस्तक के मूल पाण्डुलिपि पर नोट।

के आधार पर प्रामाणिक मान रक्खा है, ता उनसे उनकी बशाबली के प्रामाणिकता के लिए किसी निर्देश की आशा करना व्यर्थ है । यदि वे लेखक अपने कथन का अप्रामाणिक समझत ता उसका उल्लेख ही क्यों करते ?

---

## अग्रसेन

पूर्व प्रकरण में हमने अग्रसेन के पूवना की वशावली की समीक्षा की। उससे अग्रसेन का अस्तित्व काफी सिद्ध होता जाता है। इसलिये अब इस प्रकरण में स्वयं अग्रसेन का सिद्ध अग्रसेन और त सम्बन्धी विद्वन्तिया की भी अस्तित्व समीक्षा करके देखने का यत्न किया जायगा कि इसमें कितना तत्व है।

इसके लिए सबसे प्रथम पुराणों की छानबीन इस दृष्टि से उचित होगी कि उनमें अग्रसेन नामक किसी राजा का उल्लेख है अथवा नहीं फिर उस अग्रसेन की इस अग्रसेन से अग्रसेन और साम्राज्य खाने की चेष्टा की जाय। अस्तु उग्रसेन पौराणिक वशावलियों की छानबीन करने पर उसमें कोई व्यक्ति अग्रसेन नाम का नहीं मिलता। हाँ उग्रसेन नाम के कुछ व्यक्तियों का अस्तित्व अवश्य है। अग्रसेन और उग्रसेन स्पष्ट रूप से दो भिन्न नाम हैं। उग्रसेन नाम के राजाओं का अग्रसेन सम्बन्धी कथन के ऐतिहा

सिंह विदेहजन के शिशु, आश्रय बनाना किसी इतिहासकार की दृष्टि में युक्तिसङ्गत नहीं जान पड़ता। फिर भी उग्रसेन और अग्रसेन के उद्धारण में झगना साम्य है कि भूल होने की सम्भावना हा सकती है। मूलसे पूर्व के अग्रवाल जाति के कतिपय इतिहास लेखकों ने अग्रसेन और उग्रसेन का एक में मिलाने और साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा की है इसलिये प्रस्तुत विदेहजन उचित जान पड़ता है।

पुराणों में निम्न उग्रसेनो का उल्लेख है —

१—मथुरा के राजा कंस के पिता कृष्ण के नाना अन्वक विष्णि वशज उग्रसेन।

पौराणिक  
अग्रसेन

२—कुरु पुत्र परीक्षित ( युधिष्ठिर के भतीजे नहीं, वरन् पूवज) के पुत्र उग्रसेन।

३—मिथिला नरस महाराज जनक ( सीता के पिता ) के वशज जनक उग्रसेन।<sup>१</sup>

४—अर्जुन पुत्र परीक्षित ( सुप्रसिद्ध हस्तिनापुर के शासक ) के पुत्र उग्रसेन। सम्भवत इन्हीं उग्रसेन के लिए श्री विष्णु अग्रसेन वश पुराण के समदकार ने लिखा है कि उग्रसेन नामक एक राजा का महाराज युधिष्ठिर से तेरहवीं पीढ़ी में इन्द्रप्रस्थ के राजसिंहासन पर बैठना पाया जाता है । किन्तु युधिष्ठिर की<sup>२</sup>

१—श्री जयचन्द विद्यालंकार—भारतीय इतिहास की कपरिका भाग १ पृष्ठ २२२ २८६।

२—श्री विष्णु अग्रसेन वंशपुराण ( भूत कण्ठ ) पृष्ठ ८ ।

तेरहवीं पीढ़ी में इस नाम के किसी भी व्यक्ति के हाने का पुराणों में उल्लेख नहीं है ।

‘उरु चरितम्’ में अग्रसन और शूरसेन नामक दो भाइयों की सत्ता का उल्लेख मथुरा के समीपवर्ती प्रदेश में किया गया है ।

डाक्टर सत्यकेतु इसी आधार का लेकर इन अधकवृष्णिवशीय व्यक्तियों का तथा अधकविष्णिवशी शूरसेन उग्रसेन और उग्रसेन का एक मानने की कल्पना का सम्भाव्य समझत हैं । इसकी पुष्टि में वे दशम ज्ञान से भारतेन्दु बाबू कथित कृष्ण के वैश्य हाने का उल्लेख करते हैं<sup>१</sup> । श्रीयुक्त चन्द्रराज भण्डारी भी अप्रवाल जाति के इतिहास में अधकविष्णि वंशज कृष्ण के नाना कस के पिता उग्रसन का अनुमान करते हैं कि सम्भवत वे ही अग्र वालों के पूवज अग्रसेन हों क्योंकि दोनों का विवाह नाग वंश में होना उल्लिखित है ।

अधक विष्णि वंश चन्द्रवंश के यदु की शाखा है जो अधक और विष्णि के वंशजों के रूप में इस प्रकार पुराणों में व्यक्त है —<sup>२</sup>

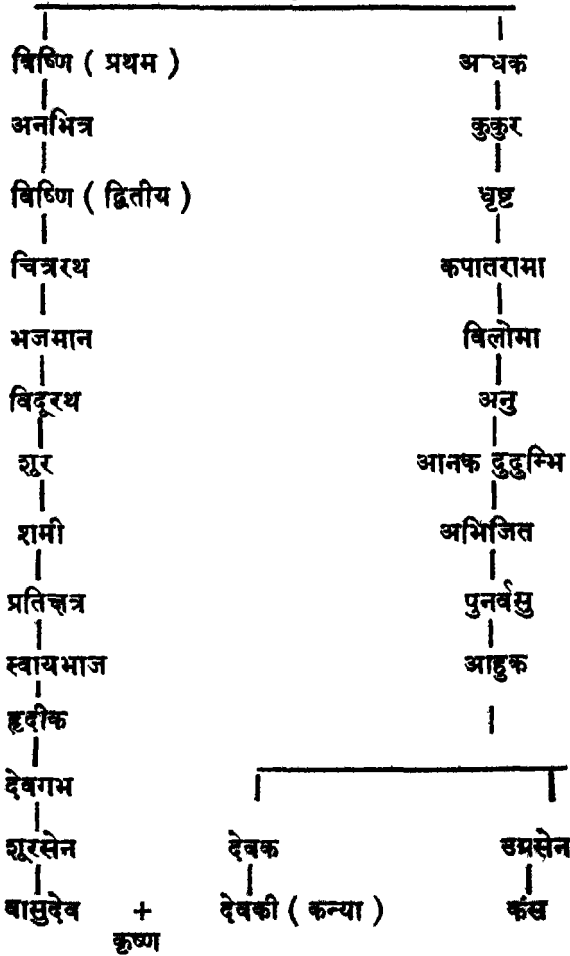
१—सत्यकेतु विद्यालंकार—अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास पृ

११ २११ ।

२—भाग १ पृ ३६ भाग २ पृष्ठ ६ ।

३—विष्णुपुराण ४११४१२ १६ २२ २७ ।

क्रोष्टा ( चतुर्वरा मे )



इस वशाबली के देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि शूरसेन और उग्रसेन में भाई का नाता नहीं है। वे दोनों आपस में समधी हैं। इसके अतिरिक्त उपयुक्त वशाबली 'चरु चरितम्' या अन्यत्र उल्लिखित अग्रसेन के पूर्वजों की वशाबली से भी एकदम भिन्न है। एक ओर वैशालक वशीय अथवा माघाता वशीय बताना और दूसरी ओर अघक-वृष्णि वश से सम्बन्ध जोड़ना उपहासास्पद सा लगता है।

दूसरी बात इस वश के उग्रसेन के पुत्र का नाम कस था जो महाक्रूर और अत्याचारी कहा गया है। उसका मारकर कृष्ण ने उग्रसेन का पुनः गद्दी पर बैठाया था और पश्चात् व स्वयम् उनके उत्तराधिकारी हुए। कस के साले जरासन्ध ने उन पर सत्रह बार चढ़ाई की। बार-बार की लड़ाई से उपीड़ित हा कृष्ण मथुरा छाड़ सपरिवार द्वारिका भाग गये और मथुरा का शासन जरासन्ध और उसके वशजों के हाथ लगा। इस प्रकार उग्रसेन के वश का अन्त हाना हमें ज्ञात है। ऐसी अवस्था में उनके वशज अप्रबाल नहीं हो सकते।

श्री अग्रवैश्य वशानुकीतनम् में लिखा है कि अग्रसेन ने कलियुग के १०८ वें वर्ष तक राज्य किया। महाभारत का युद्ध हाते समय या अन्त होने पर कलियुग का आरम्भ हुआ ऐसा माना जाता है। महाभारत के अन्त होने पर युधिष्ठिर हस्तिनापुर

१—अग्रवैश्यकेतु विद्याकर—अप्रवाह जाति का प्राचीन इतिहास पृष्ठ १११ १७५।



के राजा हुए। उनके बाद परीक्षित और फिर उनके बाद जन्मेजय गद्दी पर बैठे। राज्यावधि के परीक्षण से जान पड़ता है कि अप्रसेन के समकालीन जन्मेजय रहे होंगे। किन्तु अप्रसेन के दौहित्र कृष्ण युधिष्ठिर के समकालीन थे। इसके अनुसार ज्ञात होता है कि अप्रसेन का समय युधिष्ठिर से तीन पीढ़ी पहले रहा होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि अप्रसेन और अप्रसेन के समय के बीच छ पीढ़ी का अन्तर पड़ा। और अप्रसेन के पीछे अप्रसेन हुए होंगे।

अप्रवैश्यवशानुकीर्तनम् और उरु चरितम् की मूर्ति ही कसासुर वध' नामक एक प्राचीन पुस्तक अजयगढ़ के श्री प्रेमसुख शुक्ल के पास बताई जाती है। उसके आधारपर 'विश्वाम्भवात् इतिहास' के लेखक ने लिखा है कि महाराज अप्रसेन के परपोसे (प्रपौत्र) रणवीर ने मथुरा के राजा कंस के साथ युद्ध किया था। कंस-रणवीर-युद्ध की कथा श्रीमद्भागवत हरिविजय अथवा महाभारत में कहीं नहीं है। जिस प्रकार 'उरु चरितम्' और अप्रवैश्य वशानुकीर्तनम् की कथा अन्यत्र अप्राप्य होने पर भी डाक्टर सत्यकेतु उसे विश्वसनीय समझते हैं उसी प्रकार यदि यह भी थोड़ी देर के लिए विश्वसनीय मान लिया जाय तो इसके अनुसार अर्थ यह होगा कि अप्रसेन कंस के पिता अप्रसेन से दस पीढ़ी पूर्व रहे होंगे। इस प्रकार अप्रसेन और अप्रसेन के

१—अप्रवाह वर्ष ४ खण्ड १ सं २ पृ ४१६ वासुदेव मोदी-  
अप्रवाह इतिहास परिचय पृष्ठ १५।

समय में महान् अन्तर हो जाता है और कथित प्राचीन ग्रन्थों का कथन आपस में टकरा कर अपना कल्पित अस्तित्व व्यक्त कर देता है ।

अन्य कई लेखकों ने भी अप्रसेन का समय निर्धारित करने की चेष्टा की है । 'अप्रवाल वंश कौमुदा' म लिखा है कि

अप्रसेनकाल  
त्रेतायुग  
अप्रसेन का जन्म त्रेतायुग के प्रथम चरण में हुआ था । जाति भास्कर में इस सम्बन्ध में एक दाहा लिखा हुआ है —

बद भिगसर शनि पञ्चमी त्रेता पहले चरण ।

अप्रवाल उत्पन्न भए सुन भाखी शिवकरण ॥

शिवकण महाशय ने यह बात कहा सुनी कैसे सुनी यह हम नहीं जानत । केवल इतना कह सकते हैं कि उनके कथन से घोर निश्चिन्ता टपकती है और अप्रसेन रामचन्द्र के काल में जा पहुँचत हैं । इस समय के समथन के लिए एक कल्पना की सृष्टि की गई है । कहा गया है कि जब परशुराम जनकपुरी जा रहे थे तो रास्ते में अप्रसेन की राजधानी से गुजरे । वहाँ अप्रसेन और परशुराम में कहासुनी और गर्मागर्मी हुई । क्षत्रिय वंश नाशक परशुराम ने उस क्षत्रिय शासक की बातों का चुपचाप सहन कर लिया और केवल नि सन्तान हाने का शाप देकर अपना क्रोध

१ — बालचन्द्र मोदी-अप्रवाल इतिहास परिचय पृ १५ ।

२ — श्रीविष्णु अप्रसेन वंश पुराण ( भूत खण्ड ) पृष्ठ १२ ।

ज्ञान्त किया १ । परशुराम के स्वभाव से परिचित व्यक्ति के लिए यह कथन निरी कल्पना और आठवें आश्चर्य सा लगेगा । महान् आश्चर्य है कि परशुरामने अम्रसेन का वध नहीं किया । यदि इस कथन का सत्य मान लें तो निश्चय कहना पड़ेगा कि अम्रसेन का व्यक्तित्व महान् था और उनका वधन पुराणों में अवश्य होना चाहिए । और नहीं तो कम से कम इस कारण तो होना ही चाहिए कि राम की भोति अम्रसेन के सामने भी परशुराम की कुछ न चल सकी । जब पुराणों में इतना तक लिखा है कि राजा अश्मक के पुत्र मूलक परशुराम की डर से रनिवास में जा छिपे और उनकी रक्षा वस्त्रहीना स्त्रियों ने की २ तो यहाँ तो

१—कुछ स्थानों पर इस किंवदन्ती का रूप इस प्रकार दिया हुआ है— एक समय महाराज अम्रसेन शिकार को जाते थे मार्ग में परशुराम जी मिल गए महाराज से शिकार की दौड़धूप में भगवान परशुराम के प्रति समुचित अभिवादन में कुछ त्रुटि होगई इस मर्यादोल्लंघन से असन्तुष्ट होकर मिःसन्तान होने का शाप दिया । [ अम्रवाल ( देहली ) वर्ष १ से अम्रवाल हितैषी ( बरेली ) वर्ष ५ अक १ पृष्ठ पर उद्धृत ] एक दूसरी किंवदन्ती के अनुसार क्षत्रियों के विनाश का संकल्प कर परशुराम ने जब देशाटन आरम्भ किया । तो उन्होंने अम्रसेन से कहा कि तुम क्षात्र धर्म त्याग करो अन्यथा युद्ध करो । इसपर अम्रसेन ने युद्ध का वैलेंज्व स्वीकार किया तब परशुराम ने क्रोधित होकर श्राप दिया कि अ तेरे कोई सम्मान न होगी । ( छीतर मक गग-अम्र-वस हितैषी । ) इन किंवदन्तियों में भी वही ध्वनि है ।

२—विष्णुपुराण ४।४।७३ ७४।

परहुरसम के दुष्यू बातों के कारण उनका नाम विशेष रूप में होना चाहिये था, पर नहीं है ।

त्रेता वाली बात शायद किसी अन्य लेखक को मग्न्य नहीं है । अप्रवाल जालि के प्रामाणिक इतिहास के लेखक इस

तिथि का ठीक मानते हुए भी अप्रसेन को द्वार द्वार कलि में घसीट लाते हैं । और डाक्टर सत्यकेतु उन्हें उनसे भी पाछे कलि में ला पटकते हैं ।

उनका कथन है कि शिवकर्ण ने भूल से पुरानी अनुश्रुति में कलि को बंधल कर त्रेता कर दिया होगा । अस्तु, यदि शिवकर्ण की भूल मान भी लें तो आज भी कलियुग का प्रथम वर्षण कहा जाता है, फिर पिछले पाँच हजार वर्ष में अप्रसेन कब हुए यह अज्ञात ही रह जाता है ।

श्री० अनूपसिंह राजवशी ने बड़ी निश्चिन्तता के साथ लिखा है कि अप्रसेन के समय युधिष्ठिर महाराज का १५५६ वष बीत चुके थे । इस कथन के लिए भी प्रमाण का अन्य कारणों अभाव है । श्री अप्रवैश्यवशानुकीतनम् या 'लरुचरितम्' के अप्रसेन का समय यह ही यह असम्भव है । श्री० अनूपसिंह अप्रसेन का समय श्री अप्र

१—गुलाबचन्द एरण-अप्रवाल जालि का प्रामाणिक इतिहास पृष्ठ १८ ।

२—सत्यकेतु विशालकार अप्रवाल जालि का प्राचीन इतिहास पृ ११३ ।

३—अप्रवाल वर्ष ४ खंड ३ अंक २ पृ ४१६ बालचन्द मोदी—  
अप्रवाल इतिहास परिचय पृ ८५ ।

वैश्य वरानुकीर्तनम्' से केवल १४४८ वर्ष पीछे बताते हैं। 'मुस्त सर हालात' अप्रसेन के लेखक का कहना है कि अप्रसेन आज (सन् १९१०) से ७४३७ वर्ष पूर्व हुआ था अर्थात् आज से ७४६९ वर्ष पूर्व हुआ था \*। बिह्व ज्योतिषियों की गणनानुसार कलियुग का आरम्भ ३१०१ वर्ष ई० पू० हुआ था \*। इसके अनुसार अप्रसेन का समय ७४६९ - (३१०१ + १९४२) = २४२६ वर्ष कलियुग पूर्व हुआ।

श्रीयुक्त रामचन्द्र गुप्त ता इससे भी आगे बढ़े हुए हैं। उनके कहने के अनुसार अप्रसेन का जन्म आर्य सवत् १९७२९४१-१७२ में हुआ था \*। और श्री० प्रमुनाथप्रसाद बा. ए उनका जन्म आर्य सवत् १४७२८४१९७२ में बताते हैं \*। श्री० लखराम लिखित 'सृष्टि के इतिहास' के अनुसार आज आय सवत् १९६०८५३०४० है। इसके अनुसार श्रीरामचन्द्रगुप्त कथित समय अभी १२०८८५३२ वर्ष बाद आवेगा और श्री० प्रमुनाथजी कथित समय आज से ४९८०१२०६८ वर्ष पूर्व रहा होगा। इस प्रकार अप्रसेन के समय के सम्बन्ध में लोगों की जितनी भी कल्पनाएँ हैं उनका सम्बन्ध कस के पिता अप्रसेन के साथ क्या किसी अन्य अप्रसेन से भी नहीं जोड़ा जा सकता। किसी

१—अप्रवाल, वर्ष ४ खण्ड ३ अंक २ पृ० ४१६।

२—विश्वेश्वरनाथ रेड—भारत के प्राचीन राज बंश भाग २ पृ० ३

३—अप्रवाल पृ० ६८।

४—अप्रवाल वर्ष ३ खण्ड २ संख्या ५ पृ० ७६७।

अस्तित्वपूर्ण व्यक्ति के समय निर्धारण में इस प्रकार की अत्युक्ति अथवा अटकलबाजी से काम नहीं चला करता। इससे ता अप्रसेन का अस्तित्व और भी सन्दिग्ध हा जाता है।

जब अप्रसेन का समय निर्धारित नहीं किया जा सकता और उनका सम्बन्ध मथुरा के उग्रसेन स नहीं जाड़ा जा सकता ता हमें अन्य उग्रसेनों के सम्बन्ध मे प्राप्य तथ्यो पर भी अप्रसेन की दृष्टि से विचार कर लेना उचित हागा।

मिथिला के जनक उग्रसेन महाराज रामचन्द्र के स्वसुर राजा जनक ( सीरध्वज ) की २ वीं पीढी में कहे जाते हैं। इनका

परशुराम से भट हाना अथवा कलियुग के १०८

जनक उग्रसेन वर्ष बाद हाना या कलियुग से २४२५ वर्ष पूर्व

हाना ऐसी बातें हैं जा इन पर लागू नहीं

हार्ती। इसके अतिरिक्त पुराणो मे इन्हें कबल मिथिला का राजा बताया गया है और उनके किसी ऐसे वैभव या प्रभुत्व का उल्लेख प्राप्य नहीं है जिससे मिथिला त्याग पश्चात् जाने का प्रमाण मिल सके। अस्तु इस उग्रसेन के अप्रसेन हाने की कल्पना नहीं की जा सकती।

कुरुवशी दानों उग्रसेन में एक ता कुरु के पौत्र उग्रसेन बताए जाते हैं जा युधिष्ठिर से १७ पीढी पूर्व हुए थे। पुराण में इनका

उल्लेख मात्र हुआ है, किन्तु इनका अस्तित्व

कुरुवशी उग्रसेन सन्दिग्ध जान पड़ता है। कुरु पुत्र परीक्षित

के जिन ४ पुत्रों का उल्लेख विष्णुपुराण ने

किया है उन्हीं चार नामों को उसने अर्जुन पुत्र परीक्षित के पुत्रों के लिए भी दुहराया है।<sup>१</sup> कुरु पुत्र परीक्षित के राव्याख्य हाने का प्रमाण नहीं मिलता। उनके भाई जहनु हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठे थे। उनसे जो वंश चला उसमें युधिष्ठिर आदि हुए। इनके दूसरे भाई सुधन की पूर्ण वंशावली पुराणों में दी गई है और तीसरे भाई निषेध के विषय में भी उल्लेख प्राप्य है। पर परीक्षित के सम्बन्ध में न तो कोई सकेत है न उनकी वंशावली पुराणों में है। केवल उनके ४ पुत्रों का उल्लेख है जो मुझे ऐसा लगता है कि अर्जुन पुत्र परीक्षित की सन्तान का नाम सादृश नाम परीक्षित के कारण भ्रम से लिखा गया है। जा भी हा इनका अम्रसेन मानने का तुक नहीं मिलता। इन परीक्षित के विषय में विस्तारपूर्ण विवरण पुराणों में न हाना यह बताता है कि अम्रसेन या तो नि सन्तान रहे होंगे या उनकी सन्तति अयोग्य रही हागी। परन्तु यह स्पष्ट है कि कथित अम्रसेन के वंशज अयोग्य नहीं कहे जात।

अर्जुन पौत्र अम्रसेन का अस्तित्व अधिक प्रामाणिक है। उनके भाई जमजय पुराण के प्रख्यात व्यक्ति हैं। उन्होंने नाग जाति का प्रचण्ड रूप से सहार किया था और अपने अर्जुन पौत्र अम्रसेन पिता परीक्षित का बदला चुकाकर कुछ दिनों तक अपनी राजधानी तक्ष-शिला बना रक्खा

का \* । ऊपर हम कह चुके हैं कि वे अप्रसन्न वंशानुकीर्तनम् के अनुसार अप्रसेन के समकालीन हात हैं । इस कारण सुगमता से कल्पना की जा सकती है कि इन्हींके भाई उप्रसेन बाद म अप्रसेन बन गये होंगे । यह कल्पना यों भी सम्भव है कि इतिहासपुर भगराहा के निकट ही है साथ ही वह तक्ष-शिला से भी बहुत दूर नहीं है । किन्तु जहाँ पौराणिक आचार की यह कल्पना उप्रसेन का अप्रसेन के निकट ले जाती है वहीं किंवदन्तियों में उल्लिखित वशावली उन्हें इस वंश से बहुत दूर ले जा पटकती है । यदि इस वंश का तनिक भी सम्बन्ध हाता ता सम्भवतः अनुश्रुतियों के कल्पनाकारों का स्वतंत्र वशावली का कल्पना न करनी पड़ती ।

इस प्रकार पौराणिक उप्रसेन और किंवदन्तियों के अप्रसेन का समन्वय करना सम्भव नहीं है । यह एक ऐसी गुत्था है जा कभी भी सुलझाई नहीं जा सकती । यदि अप्रसेन के पौराणिक अस्तित्व की तनिक भी सम्भावना हाती तो सम्भव है इसका समन्वय सहज हाता ।

अब यदि पुराणों का छाड़कर अन्य ऐतिहासिक साधनों में अप्रसेन की खोज की जाय तो वहाँ भी अवतक ऐतिहासिक उप्रसेन के प्राप्य इतिहास में किसी भी अप्रसेन का पता न हाकर चार उप्रसेनों का ही पता मिलता है ।

१— अवचन्द्र विशालकार-भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ २८५-२८६ ।



१—चाम्पेय जातक नामक बौद्ध ग्रन्थ में काशी के राजा अम्रसेन का उल्लेख है। उनका समय लगभग ७ वीं शताब्दी ईसा पूर्व अनुमान किया जाता है। तत्कालीन काशिराज अम्रसेन अग और मगध के बीच में चम्पा नदी पड़ती थी। उस नदी के कच्छ में एक नागभवन था और नाग राजा चाम्पेय राज्य करता था। उसके सम्बन्ध से लिखा हुआ है कि उसे अपनी सब लक्ष्मी काशी के राजा को दे देनी पड़ी। किंवदन्ती में आये हुए राजा अम्रसेन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने चम्पावती की राज-कन्या से विवाह किया था। उनके नाग-कन्या से विवाह करने की बात भी कही जाती है। चम्पावती आधुनिक भागलपुर का नाम बताया जाता है जहाँ चम्पा नाला नाम की एक नदी आज भी बहती है। इन बातों की जहाँ सङ्गति बैठे जा सकती है वहीं अम्रसेन के अगराहा निवास की बात इसमें बाधक जान पड़ती है। अन्य बातों से भी इसका साम्य नहीं है। इसलिए इन दानों को एक मानने की कल्पना सङ्गत-पूर्ण न होगी।

२—चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में मगध के अन्तिम शिशुनाग-वरी शासक का उत्तराधिकारी महापद्मनन्द हुआ। उसका दूसरा नाम अम्रसेन भी था। पुराणों के अनुसारे महापद्मनन्द सार वह महानन्दी का ही शूद्रा से जन्मा बेटा था। जैन अनुश्रुति यह है कि वह एक नाई

१—जयचन्द्र विशालाकर-भारतीय इतिहास की कृपरेका पृ ३१८-३१९।

का चेष्टा था । बूनानी लेखक ने लिखा है कि वह एक नई या किन्तु सखी उस पर आसक्त होगई थी और धीरे-धीरे वह राज कुम्हसे का अभिभावक बनकर अन्त में उन्हें मारकर स्वयं राजा बन बैठा था <sup>१</sup> । इसपर कुछ कहना ही व्यर्थ है । यह मगध का शासक था । पञ्जाब की ओर उसके बढ़ने का कोई उल्लेख प्राप्य नहीं और सबसे बड़ी बात सा यह है कि इस शूद्र अथवा शूद्रजन्मा को अप्रसेन से मिलाना, अप्रवाल समाज की दृष्टि से बहुत बड़ी भ्रष्टता हागी ।

३—श्री विष्णु अप्रसेन वंश पुराणकार ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि अप्रसेन नाम का एक राजा आबू के परमार वंश में हुआ था <sup>२</sup> । इस कथन की पुष्टि किसी भी परमार वंशीय इतिहासिक पुस्तक स नहीं हाती । आबू के उपसेन परमार वंश का अस्तित्व ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में प्राप्य है न कि पहली । प० विश्वेश्वरनाथ रेव ने बड़े परिश्रम से 'प्राचीन भारत का राजवंश नाम से एक परिष्कृतक इतिहास लिखा है । उसमें परमार वंश पर विस्तृत खोज की गई है, किन्तु उन्होंने किसी उपसेन या अप्रसेन का उल्लेख नहीं किया है ।<sup>३</sup> उस वंश को वंशावली देखने से पता लगता है कि कोई भी उस वंश में ऐसा नहीं हुआ जिसके

१—जयचन्द्र विशालकर-भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ ५२५-५२६ ।

२—श्रीविष्णु अप्रसेन वंश पुराण (भूतखण्ड) पृ ८ ।

३—प्राचीन भारत का राजवंश—भाग १ पृ ६८-१८ ।

नाम में 'सेन' लगा है। इसलिए इस पर कुछ कहना व्यर्थ जान पड़ता है। हाँ, कुछ तुकों की कल्पना अवश्य होती है। कुछ लेखकों ने अप्रसेन की राजधानी का नाम चन्द्रावती चम्पावती और चम्पा नगरी लिखा है। आबू के परमारों की भी राजधानी चन्द्रावती थी।

चौथे अप्रसेन का उल्लेख समुद्रगुप्त (३२६ से ३७५ ईसा) के प्रयाग अभिलेख में हुआ है। वह पल्लव नगर का शासक था।

पल्लव नगर पल्लव शासकों की राजधानी थी पल्लव उप्रसेन ऐसा उल्लेख कई शिलालेखों में प्राप्य है। यह स्थान दक्षिणी कृष्णा जिले में बताया जाता है। समुद्रगुप्त ने इसे जीतकर अपने आधीन करलिया था। इससे अधिक इनके सम्बन्ध में विवरण प्राप्त नहीं है। श्री विष्णु अप्रसेन पुराणकार का इनके सम्बन्ध में कहना है कि 'बह कावेरी-तट पर था। और भारतन्दु हरिश्चन्द्रजी ने लिखा है कि महाराज अप्रसेन के पूर्वजों ने कावेरी के तट पर मन्दिर बनवाये थे। इस बात को देखते हुए पल्लव राज अप्रसेन की तरफ ध्यान देना ही पड़ता है। मैं ठीक नहीं कह सकता कि जिस राजा अप्रसेन से अप्रवाह जाति अपना विकास बढाती है ये बह हो सकते हैं या नहीं किन्तु मेरा अनुमान है कि पल्लव नरेश अप्रसेन का औरों की अपेक्षा अप्रवाहों से अधिक सम्बन्ध है।' \* इस लेखक का अनुमान कहीं तक सत्य है इसका निर्णय करना मेरी

बुद्धि के बाहर है। समुद्रगुप्त का सामन्त उग्रसेन दक्षिण का निवासी जहाँ आज भी कई व्यक्ति अपने को अम्रवाल कहने वाला नहीं है किस प्रकार अगरोहा का प्रतापी शासक हा सकता है मेरी समझ में नहीं आता।

इस प्रकार की विवेचना से हम इम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अम्रसेन तथा पौराणिक एव ऐतिहासिक उग्रसेन एक व्यक्ति नहीं हैं। किन्तु इतने से ही अम्रसेन को कल्पित वैषम्यपूर्ण कल्पनायें सृष्टि मान लेना किसी का भी स्वीकार न हागा।

अत यदि किंवदन्तियों के अम्रसेन पर दृष्टि डाली जाय ता ज्ञात हागा कि कुछ लाग महीधर का उनका पिता बताते नजर आत हैं और कुछ ससुर कहते हैं दूसरी आर कुछ लाग धनपाल का ससुर कहते हैं और कुछ लाग उन्हें अम्रसेन के पूर्व पुरुष के आसन पर जा बैठाते हैं। ऐसी वैषम्यपूण कल्पनाओं का देखकर बिश्वास करना पड़ता है कि अम्रसेन की सृष्टि भाट लोगों के मस्तिष्क में हुई है और उन लागोने उनके पूवजों को भानमती के कुनबे की तरह जाड़कर प्रतिष्ठित किया है। इसमे कितनी ऐतिहासिकता है यह कहना कठिन है। जबतक अम्रसेन क अस्तित्वको व्यक्त करने वाले प्रमाण न मिल जाँय उनका अस्तित्व सन्दिग्ध ही माना जाना चाहिए।

सम्भव है मेरे इस कथन में पाठकों का पाश्चात्य विद्वानों की तरह भारत के प्रत्येक जनश्रुत-व्यक्ति का काल्पनिक कहने की प्रवृत्ति की पुनरावृत्ति जान पड़। इसलिए यह स्पष्ट कर देना

उचित हागा कि अनुश्रुतियों का शत-प्रतिशत इतिहास नहीं माना जा सकता। हों, यह स्वीकार किया जा सकता है कि उसमें कुछ न कुछ ऐतिहासिक तथ्य अवश्य रहता है, जा अधिकारात कल्पनाओं से इतना आवृत रहता है कि उसमें से सत्य तथ्य निकालना असम्भव सा हाता है। ऐसी अवस्था में केवल किंवदंतियों और अनुश्रुतियों के आधार पर अप्रसेन का अस्तित्व सहसा स्वीकार कर लेना किसी भी मुक्त विचार के इतिहासकार के लिए कठिन है।

कारे काल्पनिक अनुमानों के आधार पर अप्रवाल जाति अथवा किसी भी जाति के विकास का इतिहास तैयार करना असम्भव है। किसी भी प्रामाणिक इतिहास के लिए तथ्यों की आवश्यकता हुआ करती है और इन अनुश्रुतियों में उसका अभाव है।

भारतवष की जाति -यवस्था एक नियम वृद्ध सस्था है। उसके किसी भी जाति के स्वतत्र विकाश की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए आवश्यक है कि सपूण पहले जाति नियमवृद्ध भारत की जातियों के विकास के क्रम पर एक संस्था दृष्टि डाली जाय। किसी जाति के विकास के खाज की चेष्टा आगामी पृष्ठों में इसी आधार पर अप्रवाल जाति के विकास के इतिहास का विवेचन किया जायगा।

---

**उत्तरार्द्ध**

## जाति

भारतवर्ष के इतिहास का आरम्भ आर्यों के उत्कर्ष से हाता है। अनेक विद्वानों का मत है कि वे लाग विदेशी थे और बिजेता हाकर सप्तसिन्धु देश में आए। कब आर्य विदेशी आए इस विषय पर भी विद्वानों में मतभेद है। लाकमान्य बाल गगाधर तिलक ने अपनी आकटिक हाम इन दि वेदाज्ज और 'आरायन नामी पुस्तकों में इनके आगमन का समय लगभग ६००० बष विक्रमीय पूर्व माना है। उनके मतानुसार आय लाग सबसे पहले उत्तरी ध्रुव के निवासी थे। हिन्दू शास्त्रों में लिखा है कि देवताओं के दिन और रात छ छ महीने के हाते हैं। यह बात उत्तरी ध्रुव के लिए आज भी घटित है। आइसलैण्ड नामक द्वीप में भी यही दशा है। जब तक सूय उत्तरायण रहते हैं तब तक वहाँ बराबर दिन रहता है और दक्षिणायण सूर्य में छ मास तक रात बनी रहती है। इस प्रकार ध्रुव प्रदेश में, वर्ष में एक दिन और एक ही रात होती है। हिन्दू-राज देवताओं का यही दिन रात

मानते हैं। इससे यह ध्वनि निकलती है कि आदिम आय लोग ध्रुव में रहते थे और वहीं से चलकर वे पूर्वी रूस मध्य एशिया तथा योरोप में फैले और भारत आए।

दूसरी आर कतिपय विद्वान् यह मानते हैं कि आर्य लोग विदेशी नहीं हैं और उनकी उत्पत्ति इसी भारत-भूमि पर सरस्वती नदी के प्रान्त में हुई। वही प्रकृति ने जीव आर्य-सरस्वती प्रदेश सृष्टि का काय आरम्भ किया। प्रकृति के विकास निरन्तर उद्याग के पश्चात् जा मानव सृष्टि हुई, वे ही मानव आर्य थे। रावबहादुर नारायण भवन राव पावगी ने 'दी आयवर्तिक हाम एराड दि आयन क्रेडिल इन दि सप्तसि-धूज डाक्टर ए सी० दास ने ऋग्वेदिक कल्चर और श्रीसम्पूजान द ने आर्यों का आदिम देश' नाम्नी पुस्तकों में इस मतका विस्तार-पूर्वक प्रतिपादन किया है। इन दोनों मतों के विद्वान् एक मत होकर ऋग्वेद का आर्यों का आदिम ग्रन्थ मानते हैं और उसीके आधार पर अपने-अपने मत की पुष्टि करने की चेष्टा करते हैं।

ऋग्वेद में प्रयुक्त दास और 'दस्यु शब्द का लेकर भिन्न भिन्न मत प्रकट किए गए हैं। आर्यों को विदेशी मानने वाले विद्वानों का कहना है कि जब आय लोग यहाँ आए तो यहाँ के आदिम निवासियों ने उनका सैकड़ों वर्ष तक दल बाँधकर सामना किया इस कारण आर्य लोगों का आगे बढ़ने में काफी



कठिनाई हुई। आगे बढ़ने की प्रगति इतनी धीमी रही कि यंआब में केवल सरस्वती नदी तक पहुँचने में लगभग डेढ़ हजार वर्ष लग गए। इस संघर्ष के कारण स्वाभाविक था कि आर्य आदिम निवासियों से श्रृष्टा करें और अलग रहें। इसके अतिरिक्त दोनों समुदायों की रहन सहन, सम्बन्धता आदि सभी बातों में महान् अन्तर रहा हागा इसलिए आर्यों ने यहाँ के निवासियों से अपने को अलग रक्खा और उन्हें 'दस्यु' अथवा 'दास' नाम से पुकारना आरम्भ किया। दूसरी ओर आर्यों को भारतीय मानने वाले विद्वानों का कहना है कि दास और 'दस्यु' शब्द यज्ञादि क्रियाओं का न करने वाले और उसमें विघ्न डालने वाले आर्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है और उन्हें ही अनाय भी सम्बाधित किया गया है। वस्तुतः तथ्य जा भी हो हमें इससे प्रयोजन नहीं। दानों मत के विद्वानों के कथन से स्पष्टतः समाज में आय और अनाय नामक दो विभाग का ज्ञान हाता है।

आर्यों और अनायों का यह भेद ही वर्ण-भेद का आदिम रूप है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में एक भी वाक्य ऐसा नहीं मिलता जिससे प्रकट होता हा कि उस समय उनके वर्ण भेद समाज मे जाति भेद सरीखा कोई भेद वर्तमान था। यदि उस समय जाति भेद वर्तमान होता तो यह सम्भव नहीं कि ऋग्वेद की दस हजार ऋचाओं में समाज के इस प्रधान सिद्धान्त का कहीं उल्लेख न होता। उत्तर काल की एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है जो विस्तार में ऋग्वेद का

दसवाँ ही अंश हा और उसमें जाति भेद का बणन न हा<sup>१</sup> ।

'बण' शब्द जिसका अर्थ आजकल 'जाति' लिया जाता है, ऋग्वेद में केवल भार्यों और अनार्यों का भेद प्रकट करने के लिए आया है । कहीं भी उसका प्रयोग आर्यों ऋग्वेद में बर्ण<sup>२</sup> की भिन्न भिन्न जातियों को प्रकट करने के लिए नहीं हुआ है । वेद में 'क्षत्रिय' शब्द का प्रयोग जिसका अर्थ आजकल क्षत्रिय जाति किया जाता है, केवल विशेषण की भाँति देवताओं के सम्बन्ध में हुआ है और उसका अर्थ बलवान है<sup>३</sup> । 'विप्र' जिसका तात्पर्य आजकल ब्राह्मण जाति से लिया जाता है वह भी ऋग्वेद में केवल विशेषण की भाँति देवताओं के सम्बन्ध में आया है और वहाँ पर उसका अर्थ बुद्धिमान है<sup>४</sup> । इसी प्रकार ब्राह्मण शब्द जो आजकल ब्राह्मण जाति प्रकट करता है उसका प्रयोग सैकड़ों जगह केवल सूक्तकार के अर्थ में हुआ है<sup>५</sup> ।

कहने का तात्पर्य यह है कि लगभग २०० वर्ष विक्रमीय पूर्वतक जातियाँ नहीं थी । लाग उस समय तक एक में मिलकर रहते थे और एक ही नाम अर्थात् विश के नाम से पुकारे जाते

१—आर सी दत्त-हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन एशियेण्ड इण्डिया भा १ पृष्ठ ६५ ।

२—ऋग्वेद ३।३६।४ आदि ।

३—ऋग्वेद ७।६४।२ ७।८८।१ आदि ।

४—ऋग्वेद ८।११।६ ।

५—ऋग्वेद ७।१३।८ आदि ।

थे १ । जो भी व्यक्ति मंत्र रचने की योग्यता रखता था और अपने बन्धुओं द्वारा सम्मानित हो सकता था विश 'ब्राह्मण' अर्थात् मुनि कहकर पुकारा जाता था । जिसने शस्त्र क्रिया में वृद्धता प्राप्त की वह 'क्षत्रिय' अर्थात् बलवान् कहा जाता था किंतु चाहे वह बुद्धिमान हो अथवा बलवान् वह 'विश' अर्थात् एक ही समाज का समझा जाता था २ । ऋग्वेद में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि सब समाज के समान अङ्ग हैं ३ ।

इस प्रकार ऋग्वैदिक काल के अन्त तक जातिभेद न था ४ । किन्तु थोड़े ही दिनों पश्चात् भेद स्पष्ट होने लगा और ब्राह्मणवर्ग अलग पैदा हुआ । रामायण में लिखा है कि वर्ण भेदका आरम्भ कृतयुग में केवल ब्राह्मण ही तपस्या करते थे त्रेत्रायुग में क्षत्रिय लागू उत्पन्न हुए और तब आधुनिक जातियाँ बनीं ५ । इस कथन का ऐतिहासिक भाव यही हाता है कि वैदिक युग में आय सब समुक्त थे और समान कृत्य करते थे । पश्चात् धर्माध्यक्ष ( ब्राह्मण ) और शासक ( क्षत्रिय ) वर्ग स्पष्ट रूप से प्रकट हुए और तदनन्तर शेष जन

१—वेबर इण्डियन लिटरेचर ( ट्रान्सलेशन ) पृ ३८ ।

२—पी एन बोस—हिन्दू सिविलाइजेशन अण्डर वृटिश रूल भा २ ।

३—ऋग्वेद १ । ६ । ६, १ ।

४—पी एन बोस—हिन्दू सिविलाइजेशन अण्डर वृटिश रूल भाग १ ।

५—वाल्मीकि रामायण—उत्तरकाण्ड अध्याय ७४ ।

साधारण वैश्य और शूद्रों में बँट गए <sup>१</sup>। बृहदारण्यक उपनिषत् से भी इस कथन का समर्थन हाता है कि पहले एक मात्र ब्राह्मण जाति थी वह जाति अकेली न बढ़ सकी इससे उस श्रेष्ठ वर्ग ब्राह्मण ने क्षत्रिय की सृष्टि की <sup>२</sup>। महाभारत (शान्ति पर्व) में अर्जुन के प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'देव दक्षनारायण के वाक्यसंयम के समय उनके मुख से पहले ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई। अन्यान्य वर्ण ब्राह्मण से उत्पन्न हुए' <sup>३</sup>। अथर्ववेद के एक श्लोक से भी प्रकट हाता है कि उस काल तक दो ही विभाग समाज के थे <sup>४</sup>।

इस तरह के स्पष्ट भेद हा जाने पर भी उनमें किसी प्रकार का भेद भाव जैसा कि आजकल देखा जाता है, नहीं था जन्म से कोई ब्राह्मण क्षत्रिय अथवा शूद्र नहीं हाता था।  
वर्ण कर्मणा वह गुण और कर्म का भेद माना जाता था <sup>५</sup>।  
प्रत्येक का अपनी इच्छा के अनुसार व्यवसाय निर्धारित करने और व्यवसाय बदलने की पूरी स्वतंत्रता थी,

१—भार षी दत्त-हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन एंशेण्ड इण्डिया भा १ पृष्ठ १५४।

२—बृहदार ण्यक उपनिषत् १।४।११।

३—महाभारत शान्ति पर्व ३४२।२१।

४—अथर्ववेद २।२५।

५—यजुर्वेद २६।२ महाभारत शान्तिपर्व १८६।२।७।

६—महाभारत शान्तिपर्व १९८।२।८; अनुशासन पर्व १४३।५१; १४४।२६ ४६ ४७ ५९ बृहद्धर्म पुराण उत्तर खण्ड १।१४।१६।

‘कवस्त्रय बदलने पर उसका वर्ण भी बदल जाता था’ । प्राचीन ग्रन्थों में इसके असंख्य उदाहरण मिलते हैं ।

छान्दोग्य उपनिषत् में लिखा है कि सत्यकाम जाबाल नामक दासी पुत्र जिसके पिता का निश्चय माता भी नहीं कर सकती थी ब्रह्मविद्या सीखकर ऋषियद् को प्राप्त हुआ <sup>१</sup> । ऐतरेय उपनिषत् के निर्माता ऐतरेय, जैसा कि नाम से विदित होता है इतरा अर्थात् शूद्रा के पुत्र थे उनका पूरा नाम महिदास ऐतरेय था <sup>२</sup> । दास्यतम ऋषि की माता का नाम वशिज था <sup>३</sup> जो शूद्र दासी थीं <sup>४</sup> । करण वशी वत्स दासी पुत्र थे <sup>५</sup> । ऐतरेय नामक ऋषि की माता इलिष भी एक शूद्र दासी थीं <sup>६</sup> । महाभारत में इस प्रकार के अनेक उल्लेख प्राप्य हैं । वेदान्त सूत्र और महाभारत के रचयिता व्यास केवट ( मछाह ) पुत्री के जारज सन्तान थे, उनके पिता पराशर चारुबाली के पेट से पैदा हुए थे । महासुनि वशिष्ठ गणिका पुत्र थे । तपस्वी विश्वामित्र क्षत्रिय थे ।

उपनिषत् से ज्ञात होता है कि ब्रह्मज्ञान के बड़े-बड़े उपदेष्टा

१— ऐतरेय ब्राह्मण ४।१।१ ।

२— छान्दोग्य उपनिषत् ४।४।

३— ऐतरेय उपनिषत् १।८।२।

४— पञ्चविंश ब्राह्मण १४।१।१७।

५— बृहद्देवता ४।२४।१५।

६— पञ्चविंश ब्राह्मण १४।६।६।

७— ऐतरेय ब्राह्मण २।८।

८— महाभारत वनपर्व ।

क्षत्रिय हैं। जनक अजातशत्रु अश्वपति कैकय प्रवाहण, जैबलि आदि बड़े बड़े ब्रह्मवेत्ता थे जिनके पास ब्राह्मण ऋषि भी ब्रह्मविद्या सीखने आते थे <sup>१</sup>। क्षत्रिय लाग यज्ञ के अनुष्ठान के परिचालक भी होते थे <sup>२</sup>। भृगुवशी लाग रथ बनाया करते थे <sup>३</sup>। हरिवंश पुराण में लिखा है कि नाभागरिष्ठ वैश्य के दो पुत्र ब्राह्मण हो गए <sup>४</sup>। विष्णुपुराण में लिखा है कि नैदिष्ठ के पुत्र नाभाग वैश्य हो गए एक ही कुल में चारों वर्ण के मनुष्य होने का भी प्रमाण मिलता है। विष्णुपुराण में लिखा है कि गृत्समद का पुत्र सुनक था जिसका पुत्र सौनक हुआ उसके बंश में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्ण के लोग अपने कर्मानुसार हुए। एक ही परिवार में अनेक व्यवसाय के लाग होते थे। ऋषिपुत्र अगिरस कहत हुए पाये जात हैं कि मैं स्तव रचना करता हूँ पिता भिषक ( वैद्य ) और माता पिसनहारी ( शिलाप्रक्षयी ) है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग्यता और बुद्धि के बलपर

१—बृहदारण्यक उपनिषत् ३।१।१ ६।२।१ छान्दोग्य उपनिषत् ४।१।१ ४।२।१ ५।१४।८।

२—ऋग्वेद १।१८८।

३—महाभारत आदिपर्व अध्याय १७५।

४—हरिवंश पुराण ११।६४८।

५—विष्णुपुराण ६।२।२५।

६—विष्णुपुराण ४।८।६ हरिवंश पुराण २१।३२।

७—ऋग्वेद ६।११२।३।

कर्म और कर्म के अनुसार वर्ण का निर्माण होता था<sup>१</sup>। बौद्ध कथा साहित्य में भी इस बात का स्पष्ट निर्देश है। उनके देखने से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण स्वयं कहते थे कि ब्राह्मणत्व का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है वरन् कर्म से है।

न जन्मा ब्राह्मणो होति न जन्मा होति अब्राह्मणो

कम्मना ब्राह्मणो होति कम्मना होति अब्राह्मणो ।

ब्राह्मण हाना वैदिक पूजा के ज्ञान पर निर्भर करता था और ब्राह्मण पद पाने के लिए विधान हाते थे। कौस्तकी ब्राह्मण में लिखा है कि यदि शिष्य में ब्राह्मण हाने की याग्यता है तो गुरु को अधिकार है कि वह उसे आर्षेयम् अर्थात् ब्राह्मण पद दे दे<sup>२</sup>।

कौस्तकी के इस कथन से स्पष्ट जान पड़ता है कि वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भिक रूप एक सघ अथवा सस्था (Corporation) सरीखा रहा होगा। याग्यता के बल पर कोई उसका प्रारम्भिक रूप भी किसी वर्ण में प्रवेश कर सकता था। बाद में यही व्यवस्था जाति व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गई और ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जातियों ने स्थायी रूप धारण कर लिया। और स्वतंत्र सत्ता के विकास के साथ-साथ ब्राह्मणों में विद्याध्ययन विशेष के आधार पर

१—शतपथ ब्राह्मण ११।६।२।१ तैत्तरेय ब्रह्मिन्ना ६।६।१

४ काठोपनिषद् ३।१।

२—संयुक्त निकाम वासुदेव सुत वयु कथा।

३—कौस्तकी ब्राह्मण २४।५५।

उपभेदों का भी विकास होने लगा। यथा—यजुर्वेदीय ऋग्वेदीय आपस्तम्ब मैत्रेयणा हिरण्यकष आदि। तत्पश्चात् जन्मगत समाज के विकास होने पर उपजातियों का निर्माण विद्याध्ययन के स्थान पर निवास स्थान के आधारपर होने लगा। यथा—कान्यकुब्ज गौड़ कोंकणस्थ, तैलंग आदि। इस प्रकार धीरे धीरे ब्राह्मण वर्ग में अनेक शाखाओं और उपशाखाओं का निर्माण हुआ और आज ता ब्राह्मण जाति में हजारों भेद और उपभेद हैं। अकेले सारस्वत ब्राह्मणों में ४६९ शाखाएँ हैं। ब्राह्मण नाम से सम्बन्धित होनेवाले इस वर्ग का इन भेदोपभेदों का भाजन व्यवहार और विवाह सम्बन्ध के विचार से पृथक पृथक जातियाँ ही सम्भन्ना चाहिये<sup>१</sup>। इसी प्रकार क्षत्रिय जाति के नाम से पुकारे जानेवाले वर्ग में भी ५९ शाखाएँ हैं<sup>२</sup>।

ऊपर हमने एक स्थान पर उल्लेख किया है कि आरम्भ में सारी जनता विश के नाम से पुकारी जाती थी। विश का मूल  
 वैश्य अथ ता कंबल बैठना<sup>३</sup> है। घूमने फिरने के बाद जब आय लाग भूमि पर बैठ गए अर्थात् स्थायी रूप से बस गए और मुख्यत खेती बारी से अपनी जीविका करन लगे तब उनकी बस्ती विश<sup>४</sup> कहलाने लगी।

१—ब्रह्मफील्ड—रिजिजन आफ दि वेदाज पृ ६।

२—लाला वैजनाथ हिन्दुइज़म-ऐंशियेष्ट एण्ड मॉर्न पृ ६।

३—रामबहादुर शर्मा—ब्राह्मण्य परिचय प ४।

४—लाला वैजनाथ—हिन्दुइज़म ऐंशियेष्ट एण्ड मॉर्न प ६।



बस्ती के अर्थ से धीरे-धीरे यह शब्द बसने वालों अर्थात् जनता का द्योतक हागया<sup>१</sup>। पश्चात् जब ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग टूट हाकर जन समुदाय से अलग हागया ता शेष जन समुदाय के लिए जा काफी बड़ी सरया में था विश' शब्द का प्रयाग होने लगा। ऋग्वेद के एक मात्र से यह बात स्पष्ट ज्ञात हाती है।<sup>२</sup> उसमे पहले क्षत्रिय के लिए बल की प्राथना की गई है फिर विश के लिए वही प्राथना दुहराई गई है। यह विश वर्ग धीरे धीरे विशय और पश्चात् वैश्य कहा जाने लगा।<sup>३</sup> ये लाग खेती पशुपालन नाना प्रकार की दस्तकारी इयादि बहुत से यवसाय करते थे। धारे धीरे इसम भी व्यवसायिक एव भौगालिक कारणों से अनेक समुदाय का निर्माण हाने लगा।

वैश्य समाज नाम के अतिरिक्त अन्य बातों में आरम्भ से ही अनेक समूहों में विभक्त जान पडता है। वैदिक  
वैदिक समूह साहित्य मे कितने ही ऐसे समुदायों के नाम मिलत हैं जा आज जाति के रूप में बतमान हैं। ऐसे कुछ नाम निम्न हैं —

१—बेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृ ४६—४७।

२—ऋग्वेद ८। ३५। १७—१८।

३—विशय' शब्द, वाजसनेयि संहिता १८। १४ अथर्ववेद ६। १३। १ इत्यादि में आया है। ऋग्वेद के प्रथम ९ मंडलों में वैश्य शब्द का कोई भी उल्लेख नहीं है। उसका पहले-पहल प्रयोग पुरुषसूक्त अर्थात् दशम मंडल ( ९ ) में हुआ है जो अपक्षायुक्त आधुनिक है।

वैदिक साहित्य के नाम	वर्तमान नाम	पशु
कुलाल	कुम्हार	बतन बनाना
कैवत	कैवट	मछली मारना
गोपाल	ग्वाला	दूध दही बेचना
धैवर	धावर	मछली मारना
नापित	नापित नाई	बाल बनाना

इस प्रकार के नामों की एक लम्बी तालिका प्रस्तुत की जा सकती है जिसके देखन से जान पड़ता है कि ये जातियाँ वैदिक काल में ही प्रख्यात वर्ग के रूप में प्रचलित हो गई थीं। धीवर के उत्तराधिकारी का धवर सम्बाधन के आधार पर इस मत की पुष्टि होती है। वैदिक साहित्य में निषध का उल्लेख एक प्रमुख वर्ग के रूप में हुआ है वही मनुस्मृति में एक सामाजिक संस्था बन गया है।<sup>१</sup> इसी प्रकार व्यापारिक और राजनैतिक संस्थाएँ भी धार धीर सामाजिक रूप में परिवर्तित हुई और अन्ततः जाति का रूप धारण कर लिया।

इन समुदायों का प्राचीन साहित्य में 'गण' नाम से पुकारा गया है। गण का अर्थ समूह है। प्राचीन काल में धनोपाजन एवं व्यवसाय व्यक्तिगत रूप से करना सम्भव नहीं था। व्यवसायियों का तत्कालीन अरक्षित जीवन के कारण अपना काम संगठित

होकर करना पड़ता था। उन्हें दूर देश में जाना होता था। माग बड़े बीहड़ थे। लुटेरों का भय बराबर बना रहता था। उनसे बचना तभी सम्भव था जब सगठित रूप में उनका सामना किया जाय। प्राचीन साहित्य में डाकुओं के अस्तित्व का उल्लेख पर्याप्त सख्या में है। जातक की एक कहानी में पाँच सौ डाकुओं और उसके सरदार का उल्लेख है।<sup>१</sup> अन्य कई जातक कथाओं में व्यवसायियों द्वारा डाकुओं के सामना करने का वणन है।<sup>२</sup>

व्यवसायियों का सगठित हाना इतिहास काल के प्रारम्भ में ही शुरू हागया था। ऋग्वेद में पणि शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। सेण्ट पीटर्सबर्ग डिक्श पणि नरी में इसकी उत्पत्ति पण धातु से बताया गया है जिसका अर्थ होता है बदलौन करना (to barter) और उसका तापय व्यापारी अथवा व्यवसायी माना गया है। जिमर<sup>३</sup> और लुडविग<sup>४</sup> भी इस शब्द का तापय व्यवसायी ही लेते हैं। लुडविग के मत में 'पणि' से तापय उन व्यवसायियों से है जो सदैव मुण्ड में चलते थे और अपने माल की रक्षाथ युद्ध के लिए तैयार रहते थे। यदि इस अर्थ का स्वीकार कर लिया जाय तो यह अर्थ हागा कि जातक में

१—जहदपन जातक ।

२—सतिगम्य जातक ।

३—जिमर—Altandisches Leben प २७५ ।

४—लुडविग—Der Rigveda 3 213 215

जिन सस्थाओं का उल्लेख है वे ऋग्वेद काल में भी विद्यमान थीं । व्यवसायियों की सस्थाओं की भौति शिल्पकारों के भी गण थे । किन्तु इनका विकास वैदिक काल में हा चुका था या नहीं यह निश्चित रूप से कहना कठिन है । इस शिल्पकारों के गण सम्बन्ध में आज प्रमाण रूप में केवल 'श्रेष्ठि' शब्द प्राप्य है । पारवर्ती साहित्य में श्रेष्ठिन् शब्द का प्रयोग श्रेणी सघ सस्था के रूप में हुआ है । डाक्टर मेक्डानेल का मत है कि वैदिक साहित्य में भी इसका यही अर्थ रहा होगा । डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी का मत है कि श्रेष्ठिन् का अर्थ वैदिक साहित्य में सदैव श्रेणीके मुखिया से रहा है<sup>१</sup> । इसी प्रकार राय के मतानुसार गण शब्द भी वैदिक साहित्य में श्रेणी-समूह-के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है<sup>२</sup> । इन विद्वानों के मत का देखने से पूर्व वैदिक काल में ही वैश्य समुदाय में गण और श्रेणी के अस्तित्व का अनुमान हाता है किन्तु उसका स्पष्ट निर्देश ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी में ही प्राप्य है ।

वैदिक युग के पश्चात् के साहित्य के देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि साधारणतया समान व्यवसाय से जीविकोपाजन

१—आत्रेय ब्राह्मण ३।३।३ कौस्तुकी ब्राह्मण १८।८ तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।४।१।

२—वैदिक इण्डेक्स प ४३।

३—राधाकुमुद मुकर्जी—लोकल गवर्नेमेंट इन ऐंशियेंट इंडिया प ४१।

४—सेंट पीटर्सबर्ग विश्वानरी। गण शब्द।

करने वाले लोग अपना एक समुदाय बना लेते थे और उसके लिए एक निश्चित नियम बनाते थे। गौतम ने श्रेणि वैश्यों के व्यवसाय कृषि वाणिज्य गोपालन और महाजनी (सूद पर रुपया देने) का निर्देश किया है।<sup>१</sup> इस निर्देश के पश्चात् दूसरे अध्याय में लिखा है कि कृषक व्यवसायी, गापालक महाजन और शिल्पियों का अपने अपने समुदाय के लिए विधान बनाने का अधिकार है और प्रत्येक अवस्था में उन लोगों की, जिन्हें कहने का अधिकार प्राप्त है बात सुन लेने के बाद वह (राजा) अपना निणय देगा। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक व्यवसाय के लोगों का अपना कोई न कोई निश्चित संगठन था और उस संगठन (संस्था) की इतनी महत्ता थी कि उसके बनाये नियम शासक का भी मान्य थे और शासक उस संस्था के प्रतिनिधि की सलाह लिए बिना उससे सम्बन्ध रखने वाली किसी बात का निणय नहीं करता था।

व्यवसायियों की ऐसी संस्था का व्यक्त करने के लिए 'श्रेणि' शब्द का व्यवहार होता था। इस शब्द से उस जन समूह के संगठन का बाध होता था जो एक प्रकार का व्यवसाय वाणिज्य या शिल्प करते थे<sup>२</sup>। प्राचीन साहित्य (बौद्ध और ब्राह्मण दोनों)

१—गौतम-धर्मसूत्र १ ४६।

२—वही ११।२ २१।

३—महाभारत ३।२४८।१६ कौटिलीय अर्थशास्त्र २।४।२३; रमेस चन्द्र मजुमदार—कारपोरेट लाइफ इन ऐंशियेण्ड इण्डिया पृ १७। इसके

तथा अभिलेखों में ऐसी श्रेणियों के असख्य उदाहरण पाये जाते हैं जिससे गौतम कथित प्रमुख व्यवसायियों का पूणतया समर्थन होता है।

ऐसी श्रेणियों की सख्या विभिन्न समयों और विभिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न रही होगी यह ता निश्चित सा है। मुगपक जातक म लिखा है कि राजा ने चारा वर्णों १८ हो श्रेणियों की सख्या श्रेणियों और अपनी समस्त सना का एकत्र किया। इस कथन से यह आभास मिलता है कि किसी राज्य में श्रेणियों की सामान्य सख्या १८ मानी जाती थी। किंतु य श्रेणियों किन किन व्यवसायियों की हाती था इसके निश्चय करने का कोई भी साधन आज प्राप्य नहीं है। लेखों और साहित्यों में उल्लिखित श्रेणियों की सख्या एकत्र करने पर इससे कहीं अधिक ज्ञात हाती है। निम्नलिखित नामों से श्रेणियों के विस्तृत क्षेत्र का कुछ आभास मिल सकता है—

काष्ठ व्यवसायी ( इनमें बढई राजगीर पातनिर्माता यान निर्माता आदि भी सम्मिलित हैं ) धातु शिल्पी ( इसमें स्वर्ण और रजतकार भी सम्मिलित हैं ) चमकार रगसाज माली पातवा इक डाकू बनरक्तक ( जा व्यवसायियों की देख रख करत थे ) हस्ति दन्तकार जौहरी डलिया बनाने वाले रगरज महुवा कसाई अतिरिक्त विशेष निर्देश के लिए दक्षिण राधाकुमुद मुकजी कृत लोकल गवर्नमेंट इन ऐशियेण्ड इण्डिया पृ २६।

१— जातक कथाएँ।

नाई, <sup>१</sup> औद्यान्तिक जुलाहे कुम्हार तिलपिशक (तेली) <sup>२</sup> बास कार, कसकर घणिक <sup>३</sup> गापालक कृषक, महाजन व्यापारी ( जिनमें घूम कर बेचने वाले भी हैं ) <sup>४</sup> ।

इन श्रेणियों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने की काह सामग्री आज उपलब्ध नहीं है। उनका विभिन्न कालों में जो विकसित रूप रहा है उसीका आभास मात्र ज्ञात हो जातक गाथा युग सकता है। जातक गाथा युग ( ७ वीं और ६ ठीं शताब्दी ई पू० ) पर डाक्टर रिचर्ड फिक ने बहुत ही विस्तृत अध्ययन किया है <sup>५</sup> । उनका कहना है कि इन श्रेणियों के सगठन का जहाँ तक सम्बन्ध है व्यवसायियों और शिल्पियों दानों के सगठन में अन्तर था। व्यवसायी लाग अपने पत्रिक व्यवसाय का करत हुए अपना सगठन बनाते थे, और एक व्यक्ति को अपना जेथक (जेष्ठक) अथवा श्रेष्ठिन नियुक्त करते थे किन्तु जातको मे कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे ज्ञात हो सके कि उनका सगठन उन्नतिशील था। शिल्पियों के

१—रीस डैविडस—बुद्धिस्ट इण्डिया पृ ६ ।

२ एपिग्रेफिका इण्डिका भाग १ परिशिष्ट ( नासिक अभिलेख ) ।

३—वही ( जुनार अभिलेख ) ।

४—गौतम ११।२१ ।

५—यह पुस्तक फ्रेञ भाषा में लिखी गई है और इसका अंग्रेजी अनुवाद शिशिरकुमार मैत्र ने सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम नाम से किया है ।

श्रेणियों की अवस्था इससे भिन्न थी। इनकी शिल्पकला व्यवसायियों के व्यवसाय की अपेक्षा अधिक पैत्रिक थी। पुत्र बचपन ही से अपने पिता के शिल्प का अभ्यास करता था। इस प्रकार एक निश्चित शिल्प वंशपरम्परागत चली जाती थी। किसी भी जातक में किसी शिल्पी द्वारा अपने पैत्रिक शिल्प का छाड़कर अन्य शिल्प के अपनाने का उल्लेख प्राप्य नहीं है। इसके विपरीत पुत्र द्वारा पिता के शिल्प के ग्रहण करने का उल्लेख है। अणिया की दूसरी विशेषता उनके निवास स्थान की ससामता है। गली नगर के विशेष भाग यहाँ तक कि समूच गाँव में एक ही तरह के शिल्पियों और व्यवसायियों के रहने का उल्लेख पाया जाता है। दन्तकार वीथी रजक वीथी औद्यान्तिक घर वीथिनम् महाबडडकिगामा कम्मारगामो आदि जातक में आए शब्दों से इसकी पुष्टि हाती है। ये गाव कभी-कभी बहुत बड़े हात थे। महाबडडकिगामो में एक हजार काष्ठके व्यवसायियों और कम्मार गामों में एक हजार कुम्हारों के रहने का उल्लेख है। शिल्पकारा भा जष्ठक हाता था। जेष्ठक कभी कभी वंशगत हाता था।

जातक गाथा युग के पश्चात् पूर्व घमसूत्रकाल ( ५ वीं से ३ री शताब्दी ई पू तक ) में श्रेणी संगठन अधिक विकसित दिखाई देता है। जैसा कि हम पहले गौतम के दा श्राको पूर्व बर्षसूत्र काल का उल्लेख कर आए हैं इस युग में अणियोंका अपने लिए शासन विधान बनानेका अधिकार जान पड़ता है। शासन के इन विधानों का उपयोग श्रेणी अपने



सदस्यों पर कर सकता था यह विनय पिटक में दिए द्वा नियमों से ज्ञात होता है <sup>१</sup> । एक नियम से जान पड़ता है कि श्रेणी को कुछ अबसरों पर अपने सदस्य और उसकी पत्नी के बीच पञ्च कर्म काय करने का अधिकार था । दूसरे के अनुसार श्रेणी अपने सदस्य का विवाह का आज्ञा प्रदान करता था । इस पुस्तक के एक अंश से ज्ञात होता है कि श्रेणियों को न्याय अधिकार भी प्राप्त थे । उसमें एक नियम दिया गया है कि कोई भी स्त्री जा चार रही हा शासक की आज्ञा बिना भिक्षुणी नहीं बनाई जा सकती । उस नियम म शासक का तापय राजा सच गण पुग श्रेणी लिया गया है । इससे जान पड़ता है कि न्याय के सम्बन्ध में श्रेणी का वहा स्थान समझा जाता था जो राजा अथवा अन्य राजनैतिक सस्थाओ का प्राप्त था ।

इस युग के श्रेणी संगठन के सम्बन्ध में कौटिल्य के अथ शास्त्र स बहुत कुछ ज्ञात हाता है । उसस जान पड़ता है कि उन दिनों श्रेणियों के पास बहुत बड़ा सैनिक बल भी होता था । कौटिल्य ने राजा का सैनिक शक्ति का उल्लेख करत हुए श्रेणिबल का भा उल्लेख किया है । उसस जान पड़ता है कि श्रेणियों के पास सेना इतनी काफी सख्या मे हाता थी कि वह आक्रमण और रक्षा दानाका भार ले सकती था ।

उत्तर धमसूत्र काल ( २ री शताब्दी ई पू से ४ थी शताब्दी

१—विनय पिटक ४ । २२६ ।

२—कौटिलीय अर्थशास्त्र ६ । २ । १ ।

ई० पू० तक ) में श्रेणियों और अधिक विकसित अवस्था में ज्ञात हाती है। मनुस्मृति में न केवल गौतम का ही उत्तर धर्मसूत्र काल समर्थन किया गया है वरन् उसमें ता श्रणि धम का भी उल्लेख है।<sup>१</sup> उन विधानों के देखने से जान पड़ता है कि अब य श्रणिया केवल एक व्यवसायिक एव सामाजिक सस्था न रह गई थीं वरन् ईसा शताब्दी के आरम्भ होते-हाते उनकी राजनैतिक महत्ता भी हागई थी। वे केवल राज्य के अग मात्र न थे वरन् उनका अधिकार शासक के समान हागया था। इसके अतिरिक्त प्रधान शासक की आर से उनके स्थायि-वका विश्वास भी दिलाया गया था जिसके कारण उनपर जनता का विश्वास बढ़ गया था। इसके प्रमाण अनेक शिलालेखों में मिलते हैं। इन शिलालेखों के देखने स जान पड़ता है कि लागों ने इनके हाथ में बौद्ध सरीखा काम निश्चिन्ततापूर्वक दे रक्खा था। नासिक में प्राप्त एक शिलालेख से ज्ञात हाता है कि ये श्रणियाँ ९ से १२ प्रतिशत तक वार्षिक सूद दती थीं। इसी शिलालेख से यह भी ज्ञात हाता है कि वे जनता के धन के ट्रस्टी का भी काम करती थीं साथ ही उनके हाथ में म्युनिस्पल बाड सरीखा भी काम था। न्याय और शासन के अधिकार ता थे ही । इन श्रणियों का सचालन बृहस्पतिसहिता के अनुसार

१—मनुस्मृति ८। २१६।

२—एशियाटिक इण्डिका भाग १ परिशिष्ट।

एक श्रेणि और दो तीन अथवा पाँच शासनाधिकारियों द्वारा हाता था। वे ही लोग शासनाधिकारी चुने जाते थे जो वेदज्ञ याग्य सयमी उच्चकुलात्पन्न और प्रत्येक व्यवसाय में दक्ष होते थे।<sup>१</sup> शासनाधिकारियों द्वारा संचालित इस सस्था में प्रजातन्त्रात्मक भावना पूरी तरह से थी। उनकी अपनी व्यवस्थापक सभा हाती थी जहाँ जन हित के लिए श्रेणि के सदस्य एकत्र होते थे।<sup>२</sup> उसके सदस्यों के उपस्थित होने के नियम थे जो शासक द्वारा स्वीकृत हाते थे।<sup>३</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि धीरे धीरे व्यवसायियों की इन श्रेणियों का श्रेणियों ने स्वतंत्र गण जनपद अथवा सष पारवर्ती रूप ( ट्राइबल सिटी स्टेट्स ) का रूप धारण कर लिया। कौटिल्य ने ऐसे गणों का वार्ताशादापजीवी नाम से पुकारा है<sup>४</sup>।

पश्चात् जब शक्तिशाली राजाओं का आविर्भाव हुआ तब इस प्रकार के गणों की राजनैतिक सत्ता बिल्कुल नष्ट आधुनिक जातियों हा गई। सातवीं शताब्दी में आने वाला चीनी का विकास यात्री हुएनसांग इस प्रकार के गण अथवा श्रेणियों का तनिक भी उल्लेख नहीं करता। इन

१—बृहस्पतिसंहिता १७।६।१।

२—बही १७।११।

३—नारद स्मृति १।२।

४—कौटिलीय अर्थशास्त्र ११।१।५।

संस्थाओं की राजनैतिक सत्ता नष्ट करने के पश्चात् भी तत्कालीन सम्राटों ने उनके रीति रिवाजों नियम कानूनों और प्रथाओं के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं किया वरन् उन्हें साम्राज्य के कानून का एक अंग माना। फल यह हुआ कि राजनैतिक सत्ता नष्ट हो जाने पर भी गणों और श्रेणियों की सामाजिक स्वाधीनता एवं पृथक सत्ता कायम रही। उनमें पृथक व्यक्तित्व और पृथकता की भावना बनी रही। वे अपने व्यवसायिक बुद्धि का उपयोग करते रहे और अन्ततः वा पूर्णरूप में व्यापार हो गए।<sup>१</sup> इस प्रकार पिछले डेढ़ हजार वर्ष के बीच व्यवसायिका ने अपने जाति भिन्न भिन्न समुदाय बनाये थे उनका मूल सीमित हो गया और अपने व्यवसाय एवं स्थान के अनुसार धीरे धीरे आधुनिक जातियों का रूप धारण कर लिया किन्तु जाति का आज का रूप है उसके बनने में अभी ७ वर्ष और लगें।

वैश्य समुदाय के श्रेणियों के रूप में छोटे छोटे समूहों में बँट जाने पर भी बहुत काल पश्चात् तक इनका व्यक्तित्व पृथक न था।

सारा व्यवसायी समाज ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वैश्य जातियों की भाँति एक अर्थात् वैश्य कहे जाते थे।

नवीं शताब्दी में इब्न खुरदादबाह नामक एक अरब यात्री आया था। उसने अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिखा है। उसमें वह केवल सात जातियों का उल्लेख करता है यथा—

१—काशीप्रसाद जायसवाल—हिन्दू राजतंत्र पृ ६१।

क्षत्रिय, ब्राह्मण राजपूत, वैश्य शूद्र, चाणक्यल और लाहुड़। इससे जांच पड़ता है कि उस समय तक वैश्य समुदाय जातियों के रूप में विकसित नहीं हुआ था। श्रीयुक्त वैद्य महोदय का मत है कि दशवीं शताब्दी के पश्चात वैश्य समुदाय अपने निवास के नाम पर जातियों के रूप में परिणत होने लगा था किन्तु मुस्लिम काल के आरम्भ तक आज कल वैश्य कहा जाने वाली किसी जाति का निर्माण नहीं हुआ था।<sup>१</sup> अधिकांश वैश्य कम करने वाला समाज जैन और बौद्ध धर्मावलम्बी रहा है इस कारण उसमें अधिक समय तक आज जैसी जातियों का विकास न हो सका था। हों धर्म के आधार पर उत्तर भारत के वैश्य दक्षिण भारत के वैश्यों से अलग हो गए। वैश्य समाज की आधुनिक जातियां ने अपना रूप मुस्लिम काल में ही धारण करना आरम्भ किया यह तो स्पष्ट है किन्तु कब धारण किया यह निश्चित रूप से कहना कठिन है जब भी धारण किया है यह भी बात स्पष्ट है कि उनका विकास पुरातन काल के व्यवसाय, वर्ग राजनीति और धर्म सम्बन्धी समाज और संघों (Corporations) से स्वतन्त्र रूप से हुआ है। इसी सूत्र के सहारे आज किसी भी वैश्य जाति के विकास का इतिहास ढूँढा जा सकता है।

वैश्य समाज की अनेक जातियों के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती

---

१—डी बी वैद्य—हिस्ट्री ऑफ़ मिडिल क्लास हिन्दू इण्डिया भाग ३  
प ३६१।

बहली आती है कि उनका उद्भव किसा प्राचीन राजा स हुआ है वे किसी राजा की सन्तान हैं, किसी समय किंवदंती उनका भी पृथ्वी पर राज्य था। रसेल<sup>१</sup> कनल टाड<sup>२</sup> ईलियट<sup>३</sup> आदि ऐतिहासकों का मत है कि प्रायः सभी व्यापारी एव वैश्य जातिया का उद्भव राजपूतों स हुआ है। इन लागों ने जिन किंवदंतियों का सहारा लेकर वैश्य जातियों के मूल मे राजपूतों का बताने की चेष्टा की है वस्तुत उनका ऐतिहासिक दृष्टि से अभिप्राय यही है कि किसी समय उनके अपने राज्य थे उनके भी अपने राजा थे। यद्यपि इनका आज कोई राय नहीं है ये शस्त्र धारण नहीं करती पर किसी दिन य अपना शासन स्वय करती थीं और व्यापार के साथ-साथ शस्त्र भी धारण करती थी। उनके अपने राज्य होने का मतलब उनका राजपूत या क्षत्रिय हाना भले ही लगाया जाय पर इति हास के उपयुक्त तथ्यों पर विचार करने वाले के लिए इस कथन में कोई भेद नहीं आता। उनकी पथक राजनैतिक सत्ता का अस्तित्व ऊपर हम देख चुके हैं। किसी समय उनका अपना राज्य (गण शासन) था ही व्यवसाय के साथ-साथ उनकी अपनी निजी

१—रसेल—ट्राइन्स एण्ड कास्ट्रस आफ सेन्ट्रल प्राविन्सेज भाग २ प ११६-११७।

२—टाडस राजस्थान भाग १ प ७६।

३—ईलियट—मेमायर्स आन द हिस्ट्री फोकलोर एण्ड डिस्ट्रीब्युशन आफ द रेसेज आफ एन इन्ड पी।

शासन व्यवस्था भी थी और उन्हीं गण के अन्तर्गत रहने वालों की सन्तान ये वैश्य जातियाँ हैं। इस कथन के प्रमाण इतिहास में पर्याप्त संख्या में प्राप्त हैं। मल रस्तागी खत्री, आरोड़ा आदि जातियों का विकास इसी प्रकार हुआ है। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल ने अपनी पुस्तक हिन्दू राजतंत्र में इसका विशद विवेचन किया है।<sup>१</sup> उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इन जातियों के समान ही अप्रवाल जाति का भी विकास हुआ है।




---

१—काशीप्रसाद जायसवाल—हिन्दू राजतंत्र पृ ६१।

## ‘अग्रवाल’

अग्रवाल शब्द का प्राचीनतम उल्लेख जा मुझे ज्ञात हा सका है, कासना (दिल्ली के निकट) निवासी केवल राम लिखित तज्जकिरातुल उमरा<sup>१</sup> नामक पुस्तक की हस्त प्राचीनतम लिखित प्रति में है जा लन्दन की इण्डिया उल्लेख आफिस लाइब्रेरी में है। उसम लेखक ने अपने का अग्रवाल लिखा है। इस पुस्तक में औरग जेब के समकालिक समस्त अमीर उमराओ का उल्लेख है जिसके आधार पर उसका लेखन काल अधिक से अधिक अठारहवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध हा सकता है। इससे पूव भी लाग अग्रवाल कहे जाते थे यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अकबर के राज्य काल ( विक्रमीय संवत् १६३२) की सुप्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार

१—बृटिश म्युजियम का सूचीपत्र—पुस्तक निर्देश Add १६७ ३।

२—यह सूचना हमें डाक्टर परमात्मा शरण एम ए पी एच डी ( काशी विश्वविद्यालय ) द्वारा प्राप्त हुई है, इसके लिये हम आपके आभारी हैं।



संवत् १८०१ किते मा गि बभुं क ज धा सु क वान  
 रना द्यां संशे लषर ग द पु क र गणे लो व्वा ना यो भा य  
 न द्या क क्षी ज ग की त्रि स त्पु हे न द्यार क श्री व लित श्री  
 त्रि जि त्त रा ल्वा ये अ शे त ता न्दु शे जो यु ल गे त्रे प्र द्यु ग न  
 म र ना त्त व र मा त्रि श्री रा य जी म ल स द न न क् र म  
 ल्य स तु न रा क श्री म ह र चं द स द्वा ता क न र वं द  
 स द तु न या क क्षी ना ठि क र वं द त्त तु न सा क श्री दो  
 म ता ने न कै शं गी नी न ग र ता ल्वा य म्मा न्य प र्ति प (क्षी  
 म द्य प्र न नि न्नी ता न्ना न क ह्या न क र्त्तु शे त्रे श्री लित  
 धि न प्र ति पान्ना रि ता श्री ग रे न व ल उ र द जे क न

प० राजमहल लिखित ‘जम्बू स्वामी चरितम्’ नामक एक संस्कृत पुस्तक है उसमें लेखक ने अपने सरलक को अप्रोतक वंश के गर्भ गात्र’ का बताया है।<sup>१</sup> प्रयाग के सुप्रसिद्ध प्राचीन नगर कौशाम्बी ( आधुनिक कोसम ) के निकट पभासा पहाड़ ( प्रभास पवत ) की धर्मशाला में विक्रमाय सबत् १८८१ की एक प्रशस्ति लगी हुई है, उसमें उसके निर्माता ने अपना अप्रातकान्वय गोयल गोत्र’ कह कर परिचय दिया है।<sup>२</sup> अप्रातक अथवा अप्रादक अगराहा का प्राचीन नाम है।<sup>३</sup> अगराहा पजाब प्रान्त के हिसार जिले के फतेहा

१—जम्बू स्वामी चरितम् कथामुल्ल वर्णन प्रथम सर्ग श्लोक ६४ (इह निर्देश के लिए हम डा वासुदेव शरण अप्रवाल एम ए पी एच डी के आभारी हैं ।)

२—सवत् १८८१ मिते मागशीष शुक्ल पक्ष्यां शुक्ल चासरे काशा सवे माथुर गच्छे पुष्कर गणे लोहाचार्यान्वये भट्टारक श्री जगत्कीर्तिस्तपट्टे भट्टारक श्री छलितकीर्तिजित दाम्यताये अप्रोतकान्वये गोयल गोत्र प्रयाग नगर वास्तव्य साधु श्री रायजी मलस्तदनुज फेकमहलस्तपुत्र साधु श्री मेहरचन्दस्य भ्राता सुमेरुचन्दस्तनुज साधु माणिस्यचन्दस्तपुत्र साधु हीरालालेन कौशाम्बी नगर बाह्य प्रभास पवतोपरि श्री पन्न प्रभाजिन दीक्षाह्वान कल्याणक क्षेत्रे श्री जिन विंन प्रतिष्ठा करिता अंग्रेज बहादुर राज्ये सुम ।

—एपिप्रेफिका इण्डिका भाग २, प० २४३ ।

३—मोक्षिणी प्रकृतस्की ने कुछ दिन पूर्व अपने एक लेख में अग्रोहा का पहचान अप्रोदक वा अप्रोदके रूप में की थी । ( बुलेटिन आब द स्कूल आब ओरियन्टल स्टडीज, भाग १०, पृ० २७८ ) । उनके

बाद तहसील में देहली सिरसा रोड पर स्थित एक छाटा सा कस्बा है, इसको अम्रबाल जाति अपने पूर्वजों का निवास स्थान मानती है। इन छलेखों से ज्ञात हाता है कि अकबर के समय तक अम्र

---

इस कथन की पुष्टि अगरोहा की खुदाई में मिले मुद्राओं से होती भी है। अम्रोवक एक योगिक शब्द है जिसका विग्रह अम्रउदक' होगा। उदक का अर्थ जल अथवा तालाब होता है। इसलिए अम्रोवक का तात्पर्य हुआ अम्र का तालाब अथवा अम्र से सम्बद्ध तालाब। सिरसा-अगरोहे से करनाल-थानेश्वर तक का सौ मील का प्रदेश अपने कुण्ड या हड़ों के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। इसलिए यह नाम इस बातका द्योतक है कि वहाँ भी कोई तालाब रहा है। उसकी यथाथता सिद्ध करने के लिए एक प्राचीन तालाब का चिह्न ३१ बीघे के क्षेत्रफल में आज भी बतमान है। (हिंसार डिस्ट्रिक्ट गजटियर (१९१८) पृ० २५६ ५७।)

दक्षिण पूर्व पंजाब जिस भाग में अम्रोहा स्थित है मरुस्थल सरीखा है इस लिए वहाँ स्थान की अपेक्षा जल का मुख्य अधिक माना जाता रहा होगा ऐसा ज्ञात होता है। जल के मूल्यवान होने का समर्थन वहाँ की प्रचलित एक किंवदन्ती से भी होता है। कहते हैं कि अम्रोहे में हरमज शाह नाम के एक बहुत प्रसिद्ध सेठ रहा करते थे। वे लोगों को रूपया इहलोक और परलोक के बद दिया करते थे। एक दिन लखीसिंह बनजारा ने उनसे परलोक के बद एक लाख रूपया उधार लिया। रूपया लेकर जब वह घर जा रहा था तो उसने बिचार कि इतने रूपये जो मैंने परलोक के बद लिए हैं वह मुझे आगे जन्म में बैल बनकर अदा करना होगा। इससे अच्छा है कि रूपया वापस कर दिया जाय। यह बिचार कर वह बनजारा हरमज शाह को रूपया वापस करने आया। हरमज शाह ने यह कहकर कि रूपया

वाल शब्द का प्रचलन नहीं हुआ था, दूसरी ओर आज से १०० वर्ष पूर्व तक जब अप्रवाल शब्द का व्यवहार आरम्भ हागया था लोगों का अपने अप्रातकान्वय—अप्रातक निवासियों

परलोक के बद दिया गया है इहलोक में वापस नहीं लिया जा सकता वापस लेने से इन्कार किया। इसपर छत्रीसिंह ने एक साधु के आदेशा नुसार एक तालाब खुदवा कर उसके चारों ओर पहरा बैठा दिया ताकि कोई उस पानी का उपयोग न कर सके। जब कोई इसका कारण पूछता तो कहा जाता कि यह तालाब हरमज शाह का निजी है उसके पानी के उपयोग की आज्ञा सेठजी की ओर से नहीं है। यह समाचार जब सेठजी को मालूम हुआ तो उन्हें बड़ी ग्लानि हुई और सोचा कि लोग पानी के किनारे से प्यासे लौटते हैं यह घोर अन्याय है। अस्तु उन्होंने छत्रीसिंह को बुलाकर उसका रूपया भर पाई कर दिया और पहरा डठवा दिया। ( श्री विष्णु अप्रसन वरा पुराण [भूत खड] पृ० ५७-५८ ) अस्तु-यदि वहाँ के लोगों ने उस स्थान का नामकरण अपने नाम के साथ सम्बद्ध किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

अप्रोदक से अप्रोहा होजाना भाषा विज्ञान की दृष्टि से स्वाभाविक है। करनाल जिले में एक स्थान पैहोभा है जिसका प्राचीन नाम पृथूदक था। जिस प्रकार पृथूदक से पैहोभा हो गया उसी तरह अप्रोदक से अप्रोहा हुआ होगा। अप्रोहा शब्द सम्भवत प्राकृत अग + रोह जो संस्कृत के अग्र + रोधक (मूळ धातु-रोधस) से बना है उसका अर्थ अग्र का बाँध होता है। पंजाबी में रोही रोहिया रोधिक का अर्थ नदी वा नदी का गम होता है ( बुलेटिन आब द स्कूल आब ओरियन्टल स्टडीज भाग १० पृ० २७९। ) इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि अप्रोहा और अप्रोदक समानाधिक हैं।

के वंशज—होने का पता था।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त, यह भी प्रमा  
लिख होता है कि अप्रसेन के अस्तित्व का उन लोगों का पता न  
था। यदि हाता तो जम्बू स्वामी चरितम् अथवा प्रभास प्रशस्ति में  
उन्हें अवश्य स्थान मिलता और लाग अप्रोतक वशी या अप्रोतका  
न्वय न लिखकर अपने का अप्रसेनवशी या अप्रसेनान्वय  
लिखते। अतएव स्पष्ट है कि अप्रसेन की कल्पना अभी हाल की है।

देहली से पाच मील दक्षिण स्थित सारवन नामक ग्राम से  
अप्रोतक निवासी वणिक सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक के समय का  
एक अभिलेख मिला है जिस पर विक्रमीय  
संवत् १३८५ के फाल्गुन शुदि पंचमी मंगलवार की तिथि दा

१—अप्रोतकान्वय अप्रवाल से भिन्न नहीं है इसको निश्चित  
करने के विचार से मैंने प्रयागस्थ श्री सगमलालजी अप्रवाल एडवोकेट  
बाइस चांसलर प्रयाग महिला विद्यापीठ तथा श्री महादेव प्रसाद अप्र  
वाल मन्त्री अखिल भारतीय अप्रवाल सेवा समिति को लिखा। इन  
लोगों ने कृपा पूर्वक हमें सूचित किया है कि उक्त प्रशस्ति के संस्थापक  
श्री हीरालाल के दत्तक पुत्र श्री मंदिर दास थे जिनके दो पुत्रियाँ श्रीमती  
बिहून बीबी और श्रीमती रजो बीबी तथा पुत्र चन्दन दास हुए। कन्यायें  
पहले मर गई थीं। चन्दन दास भी अभी हाल में आरा में मरे हैं ये  
भी निःसन्तान थे। ये लोग निःसन्देह अप्रवाल थे और प्रयाग तथा आरा  
के अप्रवाल समाज में इनका बराबर खान-पान था। इनके परिवार के  
सम्बन्ध में कपोतबुद्ध लाला जवाहर लालजी जैन द्वारा विशेष बातें मालूम  
हुईं। उनके कथनानुसार ये लोग बड़े वैभवशाली थे जो समय की गति  
से निधन हो गए। श्री हीरालाल और श्री मंदिर दास ने भारत के  
अनेक जैन तीर्थों में मन्दिर बनवाये और मूर्तियाँ स्थापित की थीं।

सारबन अभिलख

...यद्यदास्मिन्प्रपञ्चसाक्षात्परमब्रह्मण्यसिद्धिर्भाति...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...  
 ...तदाशेषविशेषादीनि सुखदुःखवैयर्थ्यात्...

हुई है इसमें अप्रवाक निवासी वणिक का उल्लेख है । एक

१—यह शिल्पा लेख इस समय दिह्नी किके के सप्रहालय में ( बी०  
६ के नाम से ) सुरक्षित है । उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है —

स्वस्ति सर्वाभीष्टफल यस्य पराराधन तत्परा  
लभन्ते मनुजास्तस्मै गणाधिपतये नम ॥ १ ॥

सत्यके नाम व पातु सांतवन्थां वया सह  
प्रसादावस्य देवस्य भक्ता स्यु सौख्यभाजनम् ॥ २ ॥

देशोस्ति हरियानास्य पृथिव्यां स्वर्गासिनम  
दिल्लिकाख्यापुरी तत्र तोमरैरास्ति निमिता ॥ ३ ॥

तोमरानन्तर यस्या राज्य निहत कटकं  
चाहमाना नृपाशुकु प्रजापालन तत्परा ॥ ४ ॥

अथ प्रताप दहन दग्धारि कुलकानन  
म्बेच्छ सहावदीनस्तां बलेन जगुहे पुरीं ॥ ५ ॥

तत प्रभृति मुक्ता सा तुरष्कैयविदधपू  
श्री महमद शादिस्तां याति सम्रति भूपति ॥ ६ अपि च ॥

तस्यां पुत्रस्ति वणिजामप्रोतक निवासिनां  
वक्ष श्री साचदेवाख्य साधुस्तत्रादपद्यत ॥ ॥

लक्ष्मीधरस्तत्रनयो बभूव लक्ष्मीधरांद्भिद्वय पद्य भृग  
देवद्विजाराधन निष्ठचित्त समस्त भूतावन लब्ध कीर्ति ॥ ८ ॥

लक्ष्मीधरस्तनयो कलिकालवाद्यावास्तामुभौ महिम वारिनिधि सुकपी  
माहाभिधो निपुण बुद्धिमूत्तदाधो श्रीकाख्य उत्तमयशा अनुजसमतस्य ९

महाख्यस्या भक्तपुत्रो मेरुहा नाम मनोहर  
देवद्विज गुरुणा व सवाराधन तत्परः ॥ १ ॥

श्रीधरस्वात्मजां वीरो नाह्वी भर्तृपरायणां  
चीका विवद्यामास तस्या मास्तामुभौ ॥ ११ ॥

दूसरे मुहम्मद शाह कालीन शिलालेख से भी इस कथन का समर्थन होता है, उसमें भी 'अप्रातक निवासिन वणिक्' का उल्लेख है।'

ज्येष्ठस्तथो खेतल नामधेय साधुत्व पायोधिरनतशील  
 पैतुक नामा च लघु समस्त गुरु द्विजाराधन शीलचित्त ॥ १२ ॥  
 भयै तयो खेतल पैतलाख्यसाध्वी सदाकीर्तन कम बुद्धा  
 ह्य शुभा सारबलाभिधानप्रामांत भूरव्यवतस्तस्य चित्तै ॥ १३ ॥  
 पितृणाम क्षय स्वग प्रप्यै सन्तान बृद्धय  
 वेतल पैतलदचैनं कारयामासतु प्रहिं ॥ १४ ॥  
 वेदबस्वभि चंद्रांक सख्येद्वे विक्रमांकृत  
 पञ्चम्यां फाल्गुनसिते लिखितम् भौमवासरे ॥ १५ ॥  
 इन्द्रप्रस्थ प्रतिगणे प्राप्ते सारबलेषु  
 चिर तिष्ठतु रूपोयं कारकञ्च सर्वाधव ॥ १६ ॥  
 सवत १३ ४ फाल्गुन शुदि ५ भौम दिने  
 —एपीमेफिका इण्डिका भाग १ पृष्ठ ९३ ९४ ।

१—Lasty he transcribed two fragmentry inscriptions in Benares College The second belongs to the time of Muhammad Shah and mentions certain merchants of the *Agrotaka n n* (Agrawala)

—इन्डियन एन्टीक्वैरी भाग १५, प० ३४३ ।

(यह निर्देश हमें डा बासुदेव शरण अग्रवाल एम ए पी एच डी से प्राप्त हुआ था। इससे ज्ञात होता है कि यह शिलालेख बनारस कालेज में था। हमने इस सन्बन्ध में कौंस कालेज के प्रिंसिपल से पूछ-ताछ की। खेद है कि उसका पता न लगा सका अन्यथा सम्भव है कुछ और ज्ञात हो सकता।)



एक तीखरे शिलालेख की सूचना हमें राय बहादुर महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा की कृपा से प्राप्त हुई है। अलवर राज्य में माचेड़ी नामक एक प्राचीन ग्राम है। उस ग्राम के दक्षिण एक बावली है जा 'अप्रवालों की बावली' के नाम से प्रख्यात है। उसमें शक सवत १८८० विक्रमी सवत १५१५

वैशाख सुदि ६ बुधवार का, बहलाल लोदी के जाति सूचना का समय का एक शिलालेख है, यह लेख बहुत बिगड़ अभाव गया है परन्तु उसमें एक शब्द 'अप्रस्थान' स्पष्ट है जा अगरोहा का सूचक है। 'अप्रस्थान' के बाद

विनिगत और फिर बावली बनाने वाले महाजन का नाम रहा हागा जा अब पढ़ा नहीं जाता। इससे भी अप्रस्थान निवासी महाजन की जाति का पता नहीं लगता। इन शिलालेखों से यह स्पष्ट पता चलता है कि अप्राहा बणिकों की बस्ती थी और १६ वीं शताब्दी तक उनमें अप्रवाल जैसी जाति का विकास नहीं हुआ था।

इन पुरातात्विक प्रमाणों से स्वतन्त्र यदि अप्रवाल शब्द पर ही ध्यान दिया जाय ता भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि उसका विकास मुस्लिम काल में ही हुआ है। अप्रवाल शब्द के 'वाल' प्रत्यय की

आर यदि ध्यान दिया जाय ता ज्ञात होगा कि मुस्लिम कालीन वह स्पष्ट रूप से उद् का प्रत्यय है। 'वाल' प्रत्यय का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, और न इसका कोई स्वतन्त्र अर्थ ही है। जब वह किसी समाज के साथ प्रयुक्त होता है तो विशेषण का रूप धारण करलेता है। यथा-

पानवाला पत्थरवाला मिठाई वाला बनारस वाला गयावाल  
प्रयागवाल आदि आदि ।

जब 'वाल' प्रत्यय किसी जाति वाचक सज्ञा के साथ प्रयुक्त होता है ता उसका अर्थ व्यवसायी अथवा मालिक हाता है, यथा-  
पानवाला पत्थरवाला, मिठाईवाला घरवाला  
'वाल प्रत्यय आदि। जब वह किसी व्यक्तिवाचक सज्ञा के साथ प्रयुक्त होता है ता उसका अर्थ निवासी होता है । यथा गयावाल प्रयागवाल बनारस वाला आदि । स्मरण रखना चाहिये कि 'वाल' प्रत्यय उसी व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ प्रयुक्त हाता है जा स्थानवाचक हा ।

इस नियम के अनुसार यदि 'अप्रवाल' शब्द की समीक्षा की जाय ता हम देखेंगे कि अप्रवाल शब्द का प्रयाग पूर्व में अकेले नहीं हाता था। वह जहा भी प्रयुक्त हाता था बहा 'अप्रवाल' शब्द का उसके साथ वैश्य या बनिया या बकाल शब्द प्रयोग अवश्य लगा रहता था उसका उपयोग अप्रवाल वैश्य अथवा अप्रवाल बनिया अथवा 'कौम बकाल अप्रवाल के रूप में हाता रहा है । इससे ज्ञात हाता है कि अप्रवाल शब्द मूलत सज्ञा न हाकर विशेषण है जा पीछे स विशेष्य के स्थान पर प्रयुक्त हाने लगा और जाति वाचक सज्ञा बन गया । ऐसा हाना व्याकरण सम्मत है । अस्तु 'अप्रवाल शब्द मे अप्र या तो व्यवसाय बोधक जातिवाचक सज्ञा है या फिर स्थान बोधक व्यक्ति वाचक सज्ञा । तात्पर्य यह कि अप्रवाल शब्द का

अथ या तो अग्र का व्यवसायी हा सकता है या फिर अग्र का निवासी ।<sup>१</sup>

१—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अग्रवाल शब्द की व्युत्पत्ति ‘अग्र + वाल की है और अर्थ किया है अग्र’ के बालक अर्थात् अग्रसेन के वंशज । (अग्रवाल्लों की उत्पत्ति प ५) उनकी यह धारणा अग्रसेन के अस्तित्व की कल्पना के कारण बनी थी किन्तु उस अवस्था में भी उनकी यह धारणा गलत थी । यदि बाल का शुद्ध रूप बाल’ मान लिया जाय तो व्याकरण के अनुसार उनकी कल्पना के प्रति कोई आपत्ति नहीं हो सकती किन्तु हिन्दी भाषा विज्ञान की दृष्टि से दन्त्योष्ठ्य ‘ब’ के बदले ओष्ठ्य ‘व’ का उच्चारण और छल्ल तो बहुत पाया जाता है किन्तु ओष्ठ्य व के बदले दन्त्योष्ठ्य व का प्रयोग इस कथनके अतिरिक्त कहीं देखने में नहीं आता । (व्याकरणाचार्य प अम्बिका प्रसाद बाजपेयी—अग्रवाल वष १ खण्ड २ संख्या ३ पृष्ठ ३५९) इसलिए अग्रवाल शब्द अग्रवाल नहीं हो सकता । यदि सामाजिक परम्पराकी ओर ध्यान दिया जाय तो भी यह कल्पना बिल्कुल निरर्थक प्रमाणित होता है । आज तक किसी भी व्यक्ति के वंशको सूचित करने के लिए उसके पिता या दादा या किसी भी पूर्वज का नाम लेकर यह कहते नहीं सुना गया है कि अमुक मोहनबाल’ है अथवा कृष्णबाल है । वंश परम्परा के बोधके लिए स्पष्ट रूप से वंशीय या वंशी शब्द का उपयोग किया जाता है या उसे अपत्य वाचक रूपमें परिवर्तित कर दिया जाता है ।

स्व कविवर श्रीजगन्नाथ प्रसादजी रत्नाकर की कल्पना है कि अग्रवाल शब्द अग्रवाल से बिगड़ कर बना है । (अग्रवाल वष १ खण्ड २ संख्या ३ प ० ६५७) आपकी कल्पना है कि अग्रवाल किसी समय क्षत्रिय थे और सेना के अग्र भागकी रक्षा किया करते थे जिसकी वजह से अग्रवाल (Vanguard) कहलाते थे । आपकी धारणा का

यहां हमें एक बात ध्यान में रखना हागा कि अकेले अग्रवाल जाति ऐसी नहीं है जिसके नाम में 'वाल' प्रत्यय लगा हो। पालीवाल आसवाल खंडेलवाल वणवाल आदि वास्तविकवासी अनेक जातियों के नाम में 'वाल' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। ये जातियाँ अपने नाम को स्थान बाधक मानती हैं। आसवालों की अनुश्रुति है कि उनका प्रादुर्भाव आस

आधार अज्ञात है। हों प्राकृत प्रकाश के 'पोव' सूत्रसे 'व' का 'व' हो जाना सम्भव अवश्य है किन्तु सेना सम्बन्धी प्राप्य प्राचीन विवरणों में अग्रवाल सरीखा कोई पद नहीं मिलता। इससे जान पड़ता है कि उन्होंने यत्नमान सैनिक शब्द 'वैंगार्ड' (Vanguard) को देखकर ही अग्रवाल की कल्पना की होगी।

डा. वासुदेव शरण अग्रवाल की धारणा है कि अग्र के साथ 'वल्ल' प्रत्यय लगकर अग्रवाल बना है। किन्तु यह धारणा भी केवल अनुमान मात्र ही है। 'वल्ल' प्रत्यय का प्रयोग रज कृषि सुत और परिषद शब्दों में ही हो सकता है। ( रज कृत्यासुति परिषदो वल्ल-अष्टाध्यायी ५।२।११२) वार्तिक में उसका अन्य शब्दों के साथ प्रयुक्त होने का उल्लेख अवश्य है। यदि वार्तिक का मत स्वीकार कर 'अग्र' के साथ 'वल्ल' प्रत्यय का प्रयोग किया जाय तो उसका रूप 'अग्रवल्ल' होगा। 'अग्रवल्ल' का अग्रवाल हो जाना सम्भव नहीं जान पड़ता। अबतक कहीं भी किसी लेख या अभिलेख में इस शब्द का उपयोग जाति या समुदाय प्रमाण के रूप में नहीं हुआ है। यदि कहीं इसका प्रयोग होतो भी उसका प्रयोग 'वैंगार्ड' (Vanguard) के ही अर्थ में हुआ होगा है। अभाव में भी यदि थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि प्राचीन काल में सेना में अग्रवाल अथवा अग्रवल्ल सरीखा अंग हुआ करता था तो भी

नगर से है। खडेलवालों की उत्पत्ति जयपुर राज्य के खडेल-नगर से हुई है।<sup>१</sup> पालीवालों का जाधपुर के पल्लीनगर से सम्बन्ध है। इससे जान पड़ता है कि ‘अग्रवाल’ शब्द भी अपने जाति के मूल निवास का ही बाधक है। इसकी पुष्टि बेलदार, भाटिया, छीपी केषट कजर कुन्हार, मछाह मोची और पटवा नामक जातियों में पायी जाने वाली ‘अग्रवाल’ नामक उपजाति से होती है।<sup>२</sup> इन व्यवसाय बोधक जातियों में ‘अग्रवाल’ नाम से

यह समझना कठिन है कि वे किस प्रकार वैश्य होगये और अपना कर्म व्यवसाय निर्धारित किया। किसी भी सैनिक समूह का व्यवसाय की ओर आने का अवतक कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इसके विपरीत वैश्य समूह के सैनिक बन जाने का उल्लेख प्राप्य है। मध्य और पारवर्ती काल में बहुत से वैश्यों ने युद्ध क्षेत्र में जाकर अपनी वीरता का प्रदर्शन किया था और आज उन वैश्यों की सन्तान बैसराजपूतों के नाम से प्रसिद्ध है। (सी वी वैद्य-हिस्ट्री आफ मिडिल हिन्दू इण्डिया भाग १ पृ ७३)

१—रायबहादुर महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीरानन्द ओझा से हमें सूचना मिली है कि अलवर राज्य में माचेदी नामक स्थान पर खडेलवालों की बावली नाम से एक बावली है जिसमें विक्रमीय सवत १४३९ शक १३ ४ वैशाख शुदि ६ रविवार का सुल्तान फीरोज शाह और उनके सामन्त गोगदेव के समय का एक लेख मिला है जिसमें ‘खंडेला निकासाय’ अर्थात् ‘खंडेला से निकले हुए’ शब्द किन्ना है।

२—शब्द कूक-द्राहन्स एण्ड कास्टस भाव दि एन शब्द पी एण्ड अर्थ; इन जातियों सम्बन्धी अध्याय।

पायी जाने वाली उपजाति यह स्पष्ट करती है कि ये सब जातियाँ कभी एक साथ रहती थीं जा कालान्तर में बिखर गईं।

अजमेर अग्रवाल सभा के मंत्री श्री रामचन्द्र अग्रवाल ( सन् १८९०-९१ )<sup>१</sup> तथा डब्ल्यू० क्रूक<sup>२</sup> ने लिखा है कि जा वैश्य अगर बेचते थे अग्रवाल कहलाए इस कथन का कोई अर्थ निकालना उपहास भले ही करे पर इस कल्पना को तथ्य-हीन कहना सहज नहीं है। आज अनेक जातियाँ ऐसी हैं, अनेक अछ ऐसे हैं जा व्यवसाय के नाम पर पुकारे जाते हैं। लाहार चमार तली नानिया लानिया हलवाई आदि साधारण जातियों के अतिरिक्त उच्च वर्ग के वैश्य भी अपने व्यवसाय के नाम पर पुकारे जाते हैं। यथा—कापड़िया चामड़िया पत्थर वाले। इसी प्रकार अगर बेचने वाले वैश्यों के अग्रवाल नाम से पुकारे जाने की कल्पना की जा सकता है। हा सकता है अग्रवाल जाति पूब में अगर का व्यवसाय करती रही हा।

वैदिक काल से लेकर बौद्ध काल और उसके पीछे भी काफी समय तक यज्ञ का बहुत ही महत्व था वह एक श्रेष्ठ धार्मिक कृति समझा जाता था। आठवीं शताब्दी तक अग्निहोत्र ब्राह्मणों का परम धर्म था और उनके यहाँ दिन रात अग्नि कुण्ड जलते रहने के पर्याप्त निर्देश

अगर का  
व्यवसाय

१—अग्रवाल उत्पत्ति।

२—डब्ल्यू० क्रूक—ट्रीडिंग एण्ड कास्टल जाय दि एन डब्ल्यू पी एण्ड अर्थ भाग १ पृ १४।

प्राप्य है। ऐसी अवस्था में यह अनुमान करना कि अगर (चन्द्र) का व्यवसाय बहुत उन्नति पर रहा होगा अनुचित न होगा।<sup>१</sup> कौटिल्य के अथरगण से निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि उस समय अगर की लकड़ी का व्यवसाय बहुत जारों पर था और वह श्रेणिक जातियों द्वारा बहुत बड़े पैमाने पर देश और विदेशों में लेजाई जाती थी। वैश्य जाति के बहुत से लोग इसी अगर के व्यवसाय से जीविका निर्वाह करते थे इस अगर के लाने के लिए उन्हें दूर देश में जाना पड़ता था। अलक्सान्द्र के आक्रमण से पूर्व काश्मीर और पंजाब में वे यही व्यवसाय करते थे और उन्हें पच्छिमोत्तरवासी होने पर भी अगर समूह के लिए पूर्य भारत के प्रान्तों यहा तक कि समुद्र के उस पार, तक आवागमन करना पड़ता था ऐसी अवस्था में यदि अनुमान किया जाय कि अगर व्यवसायियों ने भी अपनी एक श्रेणि बना रखी हागी ता अनुचित न हागा। बौद्ध जातकों में काष्ठ व्यवसायियों की श्रेणि का उल्लेख तो पाया ही जाता है।

अप्रवाल जाति का सम्बन्ध इस कल्पना से किसी प्रकार जाड़ा जा सकता है या नहीं यह निश्चयात्मक रूप से ता नहीं कहा जा सकता। किन्तु उसके मूल में गण होने का आभास इस जाति में प्रचलित किंवदन्तियों से भी हाता है। जोधपूर के मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में किंवदन्तियों के आधार पर अप्रवाल जाति का जा सक्षिप्त

१—बन्दू कूकू-द्राहन्स एण्ड कास्टस आब दि एन बन्दू पी एण्ड अवध भाग १ पृष्ठ १५।

विवरण दिया है उसके अनुसार—“अप्रसेन के वक्त यह दिखी के बादशाह थे और जब तबरो की बादशाही किंवदन्तियाँ हुई तो उनके वजीर हुए, पिछला राजा जब तीर्थ को जाने लगा ता वजीर से कह गया कि पीछे आऊँ तब तक तू तख्त पर बैठ कर राज्य करना यह ऐसा ही करने लगा । अप्रवालों ने यह दख कर कहा—भाई साहब तख्त पर ता हम भी बैठेंगे क्योंकि अप्रवाला सब ठुकराला भूग माठ में कौन बड़ाता । आखिर तख्त पर बैठने के लिए नौ आदमी चुने गये । ऐतिहासिक विवेचन से यह नौ आदमियों का निर्वाचन गण-शासन का समर्थन करता ज्ञात हाता है । इस बात का और अधिक समर्थन उस किंवदन्ती से हाता है जिसके अनुसार कहा जाता है कि अगराहे मे सबा लाख घर थे अगर उनमे कोई गरीब हाजाता था या कोई नया व्यक्ति आजाता था ता उसका एक ईट और एक एक रुपया देकर अपने समान बना लिया जाता था ।

अभी १९३८ के शरदश्रुतु मे भारतीय पुरातत्व विभाग की आर

से अगराहे के कुछ टीलों की खुदाइ हुई, जिसमें ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी की कुछ ताम्र मुद्रायें प्राप्त हुईं

आग्नेय जनपद

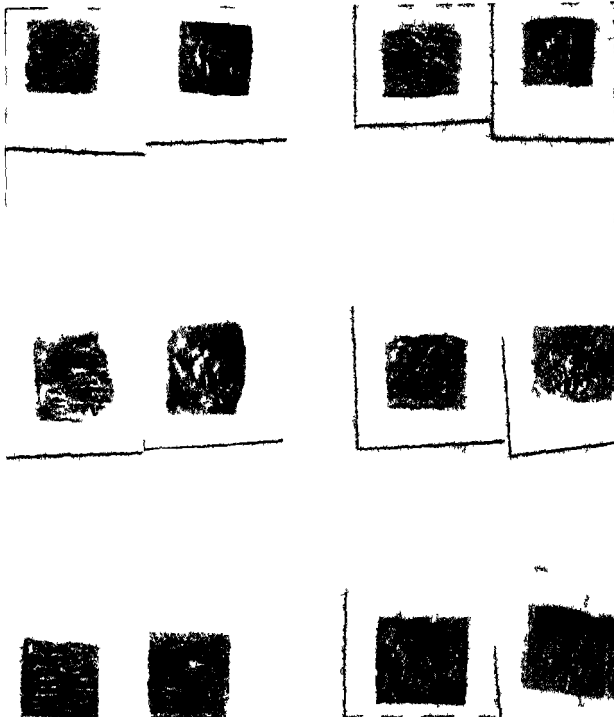
१—श्री विष्णु अप्रसेन वंश पुराण [ जीर्णोद्धार खंड ] पृष्ठ २६ ।

२—इसी ढग की कुछ मुद्रायें इससे पहले श्रीयुत राजस को अगरोहा से कुछ पूरब बरवाला नामक गांव में मिली थीं जो इस समय रुदन के ब्रिटिश म्युजियम में हैं । ( एलन-केटालाग आव द इन्डियन कायन्स इन ब्रिटिश म्युजियम पृष्ठ २८२ ४ इन्स्ट्रक्शन प० ११७ । )



आम्रय गण का मुद्राय

[फलक ३



CP 141 1/15 III

[पृ ११३

जिनसे ज्ञात हाता है कि वहा ‘आग्नेय’ नामक एक जनपद था ।

इसी प्रकार की एक मुद्रा कर्निगहम को भी मिली थी । राजर्षि द्वारा प्राप्त मुद्रायें गोल हैं । उसमें सामने की ओर बाढ़ के भीतर पेड़ और नीचे अभिलेख तथा पीछे की ओर साढ़ सिंह या लक्ष्मी का चित्र है । अगरोहा से मिली मुद्रायें चौकोर हैं अन्यथा बाकी बातें बरवाला वाली मुद्राओं के समान ही हैं । इन दोनों प्रकार की मुद्राओं पर द्वितीय शताब्दी ई पू के ब्राह्मी लिपि में अगोदके अगाच जनपदस लिखा है । कुछ मुद्राओं पर अगोदक और अगाच संधि द्वारा संयुक्त है ।

इन मुद्राओं का अभिलेख राजपूताना के चित्तौड़गढ़ के निकट नागरी से मिले मुद्राओं के लेख ‘मक्षिमिके शिबि जनपदस ( कर्निधम-आर्का लाजिकलसर्वे रिपाट भाग ६ प ० २ ३ ) के ठीक अनुरूप है । इन मुद्राओं का शिबि नामक जनपद से सम्बन्ध है । शिबि नामक जनपद या गण अलकसान्द्र के आक्रमण के समय पजाब में अगलस्तोई (आग्नेय) के पड़ोस में रहता था । उस समय उसकी राजधानी का नाम शिबिपुर ( आधुनिक शोरकोट ) था (जनल आव द पजाब हिस्टारिकल सोसाइटी भाग १ प १७४) किन्तु पश्चात् १५-१ ई पू के लोग राजपूताना वाले आर् और माध्यमिका ( मक्षिमिका-आधुनिक नागरी ) को अपनी राजधानी बनाया । अस्तु नागरी वाले लेख का तात्पर्य है—शिबि नामक ] जनपद के मक्षिमिका [ नामक राजधानी ] की [ मुद्रा । ] इसीके अनुरक्षण पर अगरोहा के मुद्रा लेखका तात्पर्य है—अग्नाच [ नामक ] जनपद के अगोदक [ नामक राजधानी ] की [ मुद्रा ] ।

१—अगोदक स्थित जनपद का नाम अगाच था यह रूपर वाले नोट से स्पष्ट है । ‘अगाच संस्कृत आग्नेय का प्राकृत रूप है । हम देखते हैं कि अगोदक और अगाच का सम्बन्ध उसी ढंग का है जिस ढंग का शिबि और शिबिपुर का अन्तर केवल इतना है कि वहाँ स्थान के नाम

डाक्टर कारी प्रसाद जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू राजतन्त्र' में जनपद शब्द का तापय ऐसा देश या राज्य बताया है जा राजनैतिक दृष्टि से सर्वथैव स्वतन्त्र हा और किसी के आधान न हो

जनपद का  
तापय

को पुर' से व्यक्त किया गया है और यहां उदक' से। इसका कारण नोट ३ पृ ९९ में स्पष्ट किया गया है। अस्तु स्पष्ट है कि अगोदक और अगाच का पूर्वांश अग एक ही वस्तु को व्यक्त करता है और वह है अग्र क्योंकि अग्रोदक का संस्कृत रूप अग्रोदक बताया जा चुका है। यह अग्र जन का नाम है और उसी के आधार पर जनपद का नाम पड़ा है।

प्राकृत अभिलेखों में देखा गया है कि वण का द्वित्व रूप बहुधा व्यजन के एक रूपमें ही लिखा जाता है और एव का ह्रस्व वण दीर्घ कर दिया जाता है इस नियम के अनुसार अगाच का शुद्ध रूप अगाच्च' या अगाच्च' होगा। स्व प हरगोविन्ददास जी सेठ ने अपने प्राकृत कोष पाइअ-सद्-महण्णवो में अगिच्च शब्द का संस्कृत रूप आग्नेय व्यक्त किया है। (पृष्ठ २२) अगि' का संस्कृत रूप अग्नि (पृष्ठ २१) और 'अग या अग्ना का अग्र' ( पृष्ठ २ ) होता है इस प्रकार स्पष्टतया अगाच्च का संस्कृत रूप आग्नेय होगा। प्राकृत में संस्कृत प्रत्यय एय का रूप ज् हो जाता है। यथा—अक्रेय = अकिज अनादय = आनज अन्नय = अगिज कौशेय = कौसेज धेय = धिज आदि आदि। इस नियम के अनुसार 'आग्नेय का प्राकृत रूप अगाज और ऊपर कथित नियम लागू होने पर उसका रूप 'अगाज' होगा। प्राकृत में कहीं कहीं ज के स्थान पर च का भी प्रयोग होता है ('चोवृज नृत्या — प्राकृत मजरी।) अस्तु इसके अनुसार 'अगाच्च' का रूप आग्नेय' होगा।

अगाच्च के संस्कृत रूप के सम्बन्ध में डाक्टर एल डी वार्नेट का मत है

यह एक प्रकार के राष्ट्र अथवा राजनैतिक समाज होते कि वह अग्राल्य या अग्राल्य का रूप है ( बुलेटिन जाव द स्कूल अफ आरियन्टल स्टडीज भाग १० पृ० २७९ । ) श्रीजुल एलन उसे अग्राल्य का रूप मानते हैं । पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल राय बहादुर काशी नाथ दीक्षित का कहना है कि वह अग्राल्य का रूप है । ( प्रोसीडिंग्स आफ दि एन्थुएल मीटिंग [ १९३९ ] आफ दि न्युमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इन्डिया । ) आपकी धारणा है कि जिस प्रकार दक्षिण के राज्यों का नामकरण राजाओं के नाम पर हुआ है उसी प्रकार सम्भव है कि हरियानक प्रदेश ( अगरोहा के आस पास का देश ) किसी अग्राल्य नामक शासक के नाम पर रक्खा गया हो । अग्राल्य दक्षिण के एक प्रख्यात पौराणिक ऋषि हो गए हैं वे उपनिवेश निर्माता के नाम से भी विख्यात हैं किन्तु उत्तर से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है इस कारण आपकी कल्पना है कि सम्भव है उसे अग्राल्य मित्र नामक किसी राजा ने बसाया हो । आपने यह कल्पना बरवाला से मिली कुछ मुद्राओं पर अंकित अगाधमित्र को देख कर किया है ।

इन विद्वानों की धारणायें भाषा विज्ञान की दृष्टि से उतनी ही पुष्ट कही जा सकती हैं जितना कि मेरी किन्तु उनके कथन के लिए न तो कोई जनश्रुति है और न कोई दूसरा ऐतिहासिक प्रमाण । अगरोहा सम्बन्धी अनुश्रुतियों में अग्राल्य या अग्राल्यमित्र का कोई स्थान नहीं है । इस लिए केवल कल्पना के आधार पर स्थापित बात मान्य नहीं हो सकती इसके विपरीत हमारी धारणा दोनों रूप से पुष्ट होती है । इसलिये अगोचर निःसन्देह आशय है । हमारे इस अनुमान को रायबहादुर महामहोपाध्याय डाक्टर गौरी शंकर हीरा चन्द जोषा ने भी अपने एक पत्र में उचित माना है । डाक्टर पञ्जाबाल आई सी एस ( चीफ एडवाइजर संयुक्त प्रान्त ) ( मुद्रातत्व सम्मेलन [ १९४० ] में सभापति पद से दिया गया भाषण ) तथा श्री वासुदेव शरण अग्रवाल एम ए० क्युरेटर, प्रान्तीय

थे १। जनपदों का नामकरण जन से होता था। जन निवासियों को सूचित करता था और जनपद उनके रहने के देश को भूमि को। ऐसे प्रजातन्त्रों अर्थात् जनपदों का निर्देश पञ्जाब में पर्याप्त संख्या में प्राप्त है जिनमें शिबि महाराज, राजन्य आदि प्रमुख हैं। इन्हीं की तरह इन मुद्राओं से जान पड़ता है कि अग रोहा में जो जनपद था उसका नाम आग्नेय था। इसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि जन का नाम अग्र रहा होगा।

महाभारत के वन पर्व में कर्ण के दिग्विजय प्रकरण में लिखा है कि कर्ण ने पच्छिम की ओर विजय यात्रा करते हुए जिन विविध राज्यों को पराजित किया उनमें एक आग्नेय नामक गण भी था जो अग्र से आगे रोहितक और मालव गणों के बीच में था।

सम्राज्य छलनक (अप्रवाल हितैषी [आगरा] वष ३ अंक ७ पृ० ३) इस बात को स्वीकार करते हैं कि अगाच का सम्बन्ध अग्र से ही होना चाहिए।

१—डाक्टर कारी प्रसाद जायसवाल हिन्दू राजतन्त्र पृ० १२३ १२४।

२—मद्रान् रोहितकाञ्चैव आग्नेयान् मत्स्रान् अपि।

गजान् सर्वान् विनिर्भित्य नीतिकृत् ग्रहसन्निव ॥

महाभारत वनपर्व—७५५ २०

डाक्टर सत्यकेतु विद्यालङ्कार ने अपनी पुस्तक अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास में उपर्युक्त श्लोक को उद्धृत करके आग्नेय नामक गण का उल्लेख किया है। आपका यह भी कहना है कि कुछ छपी हुई पुस्तकों में विशेष तथा कलकत्ता संस्करण में आग्नेय की जगह आग्नेय पाठ है।

मद्र रोहितक और मातृव्य पञ्चाच के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रहे हैं

कलकत्ता संस्करण की नकल से पीछे से छपे हुए महाभारत के बहुत से अन्य संस्करणों में भी आग्नेय पाठ दिया हुआ है आग्नेय नहीं। पर निर्णय सागर बम्बई की महाभारत में तथा पुराने छपे अन्य संस्करणों में आग्नेय पाठ है। मोबियर विकिबन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कृत इतिहास विषयान्वयी में वही पाठ दिया है। वही पाठ शुद्ध है आग्नेय की इस जगह कोई सगति नहीं बैठती। ( पृष्ठ ५८ । )

इसी सम्बन्ध में खोज करते समय मुझे वाक्यीक रामायण के अयोध्याकांड में भरत के केकय से अवध पुनरागमन के मार्ग वर्णन में निम्न श्लोक मिला—

इतिर्नी कूरपारां च प्रत्यक् ज्ञातस्तरंगिणीम्

शतद्भतरच्छ्रीमाचदीभिश्चाकु नन्दनम् ।

येकधाने नदी तीर्त्वा प्राप्य चापवतान

शिलाभाकुतती तीर्त्वा आग्नेय क्षात्यकर्षणम् ॥ सर्ग ७१ श्लोक

कुछ टीकाकारों ने इसमें आए हुए आग्नेय शब्द का तात्पर्य आग्नेय दिशा से लिया है पर अन्य ने उसे एक ग्राम माना है जो क्षात्यकर्षण के निकट था। इसके अनुसार आग्नेय की स्थिति शतदु (आधुनिक शतकुज) पार करने के बाद पड़ती है इस लिए मेरे मन में कल्पना उठी कि सम्भव है महाभारत और रामायण का तात्पर्य एक ही स्थान से हो और महाभारत की तरह इसमें भी पाठभ्रम हो ‘न’ और र का एक दूसरे के स्थान लिखा जाना कोई कठिन नहीं वरन सामान्य सी बात है। इसलिये मैंने अपनी कल्पना का उल्लेख श्री वासुदेव धरण जी अग्रवाल से किया। वे मेरे अनुमान से सहमत हैं किन्तु उनका कहना है कि जब तक रामायण के किसी पाठ में आग्नेय पाठ न मिले यह विचाराधीन रहेगा। इसी लिए हमने इसका उल्लेख पुस्तक में प्रधान रूप से नहीं किया है। पाठकों के

इनका पंजाब के इतिहास में अपना विशेष महत्व है। राहितक आज भी रोहतक नाम से कुछ दूर दक्षिण पूव और भद्र उससे कुछ दूर पच्छिम वर्तमान है। मालव रावी नदी के निचले काँठ में काट कभासिया के पास था। आज भी पूर्वी पंजाब में मालवा नाम का एक प्रदेश है जो सतलज से दक्षिण है जिसमें फीरोज़पुर और लुधियाना जिले और पटियाला नाभा रियासतों का कुछ अंश गिना जाता है।<sup>१</sup> इसके आधार पर निर्विवाद कहा जा सकता है कि यह आग्नेय गण भी वही था जिसका पता मुद्राओं से लगता है।

यवन लेखकों के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि अलवसान्द्र के आक्रमण के समय ( ३३० ई० पू० ) मालव और यवन लेखक क्षुद्रक नामक प्रजातंत्रों के पास शिवि गण से पूव अगलस्साई ( Agalassoi ) नामक एक समृद्धिशाली प्रजातंत्र था। इसके नाम का यवन लेखकों ने अपने अपने तरीके पर भिन्न भिन्न उच्चारण और रूप में Agalasseni, argesinae, agosinae, acensoni, agresinae, agin आदि

लिपि खोज की वस्तु है वे इसकी जानकारी प्राप्त करें। इसकी पहचान आग्नेय या आग्नेय रूप में बहुत कुछ शत्यकषण की पहचान पर निर्भर करती है। महाभारत के आग्नेय के सम्बन्ध में आपका कहना है कि उसके सम्बन्ध में तब तक निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता जब तक इनका सशोधित पाठ प्रकाशित न हो।

१—अय्यचन्द विद्यालंकार भारतीय इतिहास की रूपरेखा भाग २ पृ १ ।

लिखा है।<sup>१</sup> डाक्टर वार्नेट ने अगलस्साई शब्द का प्राकृत नाम अगल का युनानी लिपि में लिखने का प्रयत्न माना है।<sup>२</sup> ‘अमगल आग्नेय’ का ही एक अन्य प्राकृत रूप है यह ता किसी भाषा वैज्ञानिक का मानन में सकाच हा ही नहीं सकता।<sup>३</sup> हम ऊपर कह चुके हैं कि मालव अगराहा अथवा उसके आसपास की भूमि स बहुत दूर नहीं था। शिबि गण के लाग मग जिले के शारकाट ( प्राचीन शिबिपुर ) के आस पास निवास करते थे और सम्भवतः मग के दक्षिण पूव भी बहुत दूर तक फैले हुए थे। यवन लेखकों के वणन स ज्ञात होता है कि अलक्सान्दर काल मे ये दानो

१—मक किन्डल इनवेजन आफ इन्डिया बाई अलकजन्डर द ग्रेट  
पृ ३६७।

२—बुलेटिन आव द स्कूल आव ओरियन्टल स्टडीज भाग १  
पृ २८२।

३—अगल और आग्नेय के साम्य के अतिरिक्त इस बात की पुष्टि एक अन्य प्रमाण से भी होती है। बौद्धग्रन्थ विनय पिटक ( २ ३ ) में वैशाली की सभा से पूर्व रैवत के सौरैया से सजाति जाने के माग में अमगल पुर नामक एक स्थान का उल्लेख हुआ है। इस अमगलपुर के सम्बन्ध में मोशियो प्रजल्लस्की की धारणा है कि वह अमोद या अमोदक का ही दूसरा नाम है। आपने इस कथन की पुष्टि किस प्रकार की है इसका मुझे स्वतः शान नहीं है क्योंकि मैंने उस लेख को पढ़ा नहीं है। डाक्टर वार्नेट ने अपने लेख में उसका उल्लेख किया है और अपने स्वतन्त्र विचारों से उस मत की पुष्टि की है। ( बुलेटिन आव द स्कूल आव ओरियन्टल स्टडीज भाग १ पृष्ठ २ ८१ )



( सिबि और अगलस्साई ) बहुत बड़े प्रजासन्त्र थे । इससे जान पड़ता है कि वे दानों अवश्य ही बहुत दूर तक फैले रहे होंगे । अगरोहा से रावी के किनारे तक जा ऋग से पूव स्थित लायलपुर की पूर्वी सीमा है कुल १७ मील का दूरी है । इससे सुगमता से अनुमान किया जा सकता है कि ऋग और हिसार दानों के बीच का मान्दगामरी जिला दानों के बीच बँटा रहा होगा ।<sup>१</sup> इससे स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि यवन लेखकों का अगल स्साई यही अगराहे वाला आश्रय था ।

प्राचीन रामन लेखक प्तालीमाय ने भारतवर्ष के भूगोल का वर्णन करते हुए Agara नाम के एक स्थान का रेनेल का उल्लेख किया है । यवन लेखकों का Agiri अनुमान और यह Agara सम्भवत एक ही नाम के उच्चारण भेद से दो रूप हैं जा सम्भवत अग्र का ही रूप है । १८ वीं शताब्दी के अन्त के यारापीय भूगोल वक्ता रेनेल ने Agara का अगराहे से सामंजस्य स्थापित किया है ।<sup>२</sup>

युनानी लेखक डायोडीरस के कथनानुसार इस जाति (अगल

१—बुलेटिन आव द स्कूल आव ओरियन्टल स्टडीज भाग १  
पृ २८२ ।

२—मक किन्डल एन्डियन्ट इन्डिया ऐज डिस्कावरी बाई प्तालीमाय  
पृ १५४ ।

३—जे रेनेल मप आफ हिन्दोस्तान पृ ६५ ।

स्सोई) ने ४०००० पैदल और २००० युद्धसवारों की सेना एकत्र की थी। वे अपनी तम गतियों में जम गए थे और अलक्षान्द्र बहुत ही बीरता पूर्वक लड़े थे जिसके कारण वे शुद्ध अलक्षान्द्र को आक्रमण करते हुए आगे बढ़ने में अपने कुछ सैनिकों के प्राण गवाने पड़े थे।<sup>१</sup> दूसरे रोमन लेखक विबन्तिथे कर्तिये का कथन है कि जब वे बीर लोग (अगलस्सोई) अपने विकट आक्रमणकारियों को रोक न सके तब उन लागो ने अपने घरों में आग लगाकर अपनी स्त्रियों और बच्चों का मार डाला।

ठीक इसी प्रकार की एक किंबदन्ती अप्रवाल जाति में भी प्रचलित है। उसके अनुसार कहा जाता है कि अलक्षान्द्र ने अगराहे पर न्यारह बार आक्रमण किया था। किंबदन्ती में अन्तिम आक्रमण के समय चार घमासान युद्ध उल्लेख हुआ दोनों पक्ष के बहुत से लोग मारे गये। युद्ध समाप्ति पर मृत सैनिकों की पत्नियों तत्कालीन प्रथा के अनुसार सती हा गईं।<sup>२</sup> यदि दोनों कथनों को हम एक ही घटना की भार निर्देश मान लें ता कहना होगा कि इसारी

१—मक किन्डस इनवेजन आफ इन्डिया बाई अलक्षान्द्र द ग्रेट पृ २८५।

२—वही पृ २३२।

३—श्री विष्णु अप्रसेन वंश पुराण [ मूल खंड ] पृ ४६ ५२  
महाराज अप्रसेन का जीवन चरित्र पृ २७ ३४।

किंवदन्तियों से भी अगरोहा में आग्नेय नामक गण के हाने का आभास निहित है और वहां गण के होने में कोई सन्देह नहीं है। आज उसी के वंशजों की सतान यह अप्रवाल जाति है।

गण राज्यों के विकास के सम्बन्ध में डाक्टर सत्यकेतु विद्या लंकार ने प्रस्तुत पुस्तक की मूल पांडुलिपि में एक नाट दिया है उसमें आपने बताया है कि गण राज्यों ( ग्रीक  
अप्रभ्रेणी Polls उसका अप्रज्जी अनुवाद City states ) का इतिहास पढ़ ता ज्ञात हागा कि उसकी स्थापना विशिष्ट पुरुषो द्वारा ही की गई। प्राय सभी गण पहले राज युत ( Monarchical ) हात थे बाद म वे प्रजातन्त्रात्मक ( Republican ) हो गए। कुछ एरिष्टाक्रैटिक और कुछ डेमाक्रैटिक, कुछ में पुन राजतन्त्र हुआ और कुछ प्रजातन्त्र रूप मे ही जारी रहे। भारत में भी यही रहा। काशल गण पहले रामायण महाभारत शैशुनाग काल में राजतन्त्र था पीछे कौटिल्य के समय म प्रजातन्त्रात्मक हुआ। यही बात अन्य गणों के सम्बन्ध में हुई। आग्नेय गण भी पहले राजायुत था। इसकी स्थापना पैत्रिक रूप मे अप्रसेन द्वारा हुई थी। उसमें उसके वंशज राज्य करत थे। यह भी ध्यान रहे कि अनेक गणों मे सदा ही राजा का राय रहा। आपने इन्हीं बातों का आश्रय अपनी पुस्तक अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास मे भी लिया है ' और किंवदन्तियों और अनुभूतियों के

अग्रसेन का ऐतिहासिक व्यक्तित्व देने के लिए अगलस्सि ( अगल-स्सोई ) का अग्रसैनीय का रूप बताने की चेष्टा की है। उनकी यह धारणा नितान्त भ्रमात्मक है। डाक्टर बार्नेट ने बहुत ही पुष्ट प्रमाणों से बताया है कि वह ‘अगल का रूप है जा ‘आग्नेय के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त यदि विद्यालंकार जी का कथन ही माना जाय ता मुझे यह कहने में तनिक भी सकाच न होगा कि वह अग्रसैनीय का रूप न होकर अग्रश्रेणी का रूप है। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल ने अपनी पुस्तक हिन्दू राजतंत्र में अर्गलस्साई के दूसरे रूप अगिसिनेयि ( Agesinae ) का अग्रश्रेणी माना है। \* यद्यपि वे अग्रश्रेणी की उचित पहचान नहीं कर पाये हैं फिर भी उनकी धारणा सत्य के अधिक निकट है।

पाणिनि के अष्टाध्यायी से अग्र नामक एक जन समुदाय का ज्ञान हाता है। \* श्रेणि के सम्बन्ध में हम पहले कह आये हैं कि

१—वही पृष्ठ १४४।

२—डाक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक में अष्टाध्यायी के गोत्रापत्य प्रकरण में आये अग्र और उसके विविध रूप अग्नि आग्नेय और आग्रायण का उल्लेख करते हुए निम्न उद्धरण दिए हैं:—

(१) नडादिभ्य फक सूत्र में नडादि गण के अन्तगत अग्र शब्द भी है जिससे विविध गोत्रापत्य अर्थों में आग्नेय आग्रायण भादि शब्द बनते हैं। ४ १ २९।

(२) शरद्वकनुक दर्भात् ऋगु वत्साग्रायरोषु। ४ १: १ २।

इन उल्लेखों के अतिरिक्त हमें श्री वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा काल हुआ है कि बौध्यायन के महाप्रवर काण्ड में भी निम्न कवयियों के अन्तर्गत

वह प्रत्येक शिल्प या व्यवसाय में लगे हुये व्यक्तियों का समूह था जिसका अपने सदस्यों पर पूरा अनुशासन था श्रेणि वही उनके लिए नियम बनाती, उन नियमों का चलाती तथा न्यायालयों का काम करती। अपने मामले में उन्हें पूरी स्वायत्तता थी। इस प्रकार की श्रेणि का आधि-भार्य भारतीय इतिहास में पहले पहल आठवीं सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में दीख पड़ता है। मौर्यकाल में हम उसको और भी विकसित रूप और उन्नति अवस्था में पाते हैं। उस काल में उनकी सामाजिक एवं आर्थिक महत्ता के साथ साथ उनकी राजनैतिक सत्ता भी देखने में आती है। पाणिनि का समय ५ वीं शताब्दी ई० पू० अनुमान किया जाता है। वह तक्षिला का निवासी था। इस कारण

---

आभ्रायण आया है। यास्क में आभ्रायण नामक एक आचार्य की सम्मति का उल्लेख पाया जाता है— इन करणादिति आभ्रायण।

डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल ने पाणिनि के अष्टाध्यायी के आधार पर बहुत से गण राज्यों की सत्ता सिद्ध की है और श्री वासुदेव शरण आप्रवाल ने जिन्होंने पाणिनि का विशेष अध्ययन किया है बताया है कि गोत्रों में कुछ वतमान जातियों और प्राचीन स्थानों के नाम छिपे हैं। यदि हम नडादि गण के अन्तर्गत आए हुए शब्दों को देखें तो ज्ञात होगा कि अग्र शब्द के साथ-साथ युगान्धर उदुम्बर पचाल आदि का भी उल्लेख है जिनका अस्तित्व इतिहासों में स्पष्ट रूप से जाति अथवा समुदाय के रूप में ज्ञात होता है। इसलिये आभ्रायण आभ्रय अग्रि आदि शब्दों का सम्बन्ध अग्र नामक जाति या समुदाय से है और यह सम्भवतः वही जन रहा होगा जिसका जनपद आभ्रवे था।

उसे अग्रोहा स्थित अग्र जन समुदाय का पता होगा जो अक्षय-सामुद्र के समग्र भ्रंश से विकसित एक गण रहा होगा ।

ईसा शताब्दी पश्चात् भारतवर्ष में प्रजातन्त्रात्मक सत्ता का एक प्रकार से लाल हो गया और एकतन्त्र राज्य की स्थापना हुई ।

इस कारण इसके पश्चात् गण राज्यों का विशेष अग्रभ्रंश से उल्लेख नहीं मिलता । इसलिए बहुत सम्भव है अग्रसेन कि लग समयान्तर में गणतन्त्र के विचारों के पश्चात् एकतन्त्र की स्थापना होने पर गण व्यवस्था का भूल गये हो जा अवश्यम्भावी है । ऐसी अवस्था में गण सूचक अग्रभ्रंश शब्द शासक विशेष का वाचक समझ लिया गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं और पश्चात् वही शब्द धीरे धीरे अग्रसेन के रूप में प्रचलित होकर शासक विशेष का नाम समझा जाने लगा होगा । फिर भाट लोगों ने इसी अग्रसेन के वंशावली की कल्पना की होगी और उसे ऐतिहासिक व्यक्ति का रूप दे दिया गया होगा । भाषा विज्ञान की दृष्टि से अग्रभ्रंश का अग्रसेन हा जाना असम्भव नहीं और यह धारणा डाक्टर सत्यकेतु की धारणा की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान है ।

फिर भी यदि थोड़ी देर के लिए इस कल्पना की उपेक्षा कर दी जाय तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि आग्नेयगण में आग्नेयगण एक पैत्रिक राज्य था । आग्नेय गण में राजा का अभाव राजा नहीं होते थे यह उसकी मुद्राओं से स्पष्ट ज्ञात होता है । वहाँ न तो कोई पैत्रिक राजा

था और न कोई निर्वाचित राजा ही हाता था। जिन प्रजातन्त्र राज्यों में किसी प्रकार के राजा नहीं हाते थे उनके मुद्रा, गण के नाम से अंकित हाते थे। पजाब म मिली जनपद की अनेक मुद्राओं पर जनपद पर विशेष जार दिया गया है जिससे सिद्ध हाता है कि समस्त जनपद वहाँ का शासक समझा जाता है। इससे स्पष्ट है कि अगरोहा में भी कभी किसी राजा का शासन न था बरन बहा पूरा स्वायत्त शासन था।

आम्रय गण के राजनैतिक स्वरूप पर बरवाला से मिली उन मुद्राओं से विशेष प्रकाश पड़ता है जिनपर श्रीयुत एलन के पाठानुसार 'अगाच मित्रपदा मिशयन' अंकित है।<sup>१</sup>

आम्रय का इस मुद्रा लेख का पूवाश अगाच मित्रपद जा राजनैतिक रूप 'आम्रय मित्रपद का प्राकृत रूप है डाक्टर बार्नेट के कथनानुसार बड़े महत्व का है। उनके कथनानुसार मित्रपद का उपयोग प्राचीन राजतन्त्र में संघ (कनफडरेशन) के अर्थ में हाता था। इसलिए उक्त लेखाश से जान पड़ता है कि आम्रय की राजनैतिक सत्ता किसी संघ (कनफडरेशन) के सदस्य के रूप में थी।<sup>२</sup> माशिया प्रजलुस्की ने अपने एक लेख में पजाब में

१—कैटलाग आव द क्वायन्स आव एशियन्ट इन्डिया इन ब्रिटिश म्युजियम पृ २८२—८४।

२—बुलेटिन आव द स्कूल आव ओरियन्टल स्टडीज भाग १ प २७८।

३—वही पृ २७८।

समय-समय पर अनेक राज्य एवं वर्णों द्वारा संघ स्थापित किए जाने का निर्देश किया है और चन्द्र व्याकरण ( २-४-१०३ ) की वृत्ति के आधार पर यह बताया है कि वहाँ साख नामक छ जन-पदों का एक सघ था जिसके दो सदस्य युगान्धर और औदुम्बर थे । <sup>१</sup> डाक्टर बार्नेट का अनुमान है कि सम्भवतः आग्रय गण भी उसी सघ का सदस्य रहा होगा । आपके इस अनुमान का कोई आधार नहीं है कोरा अनुमान मात्र है इसके विपरीत हमारी धारणा है जैसा कि आगे स्पष्ट होगा कि आग्रय की घनिष्टता मालव से अधिक थी । यदि आग्रय किसी सघ का सदस्य था तो उस सघ में मालव मुरथ रूप से अवश्य रहा होगा । किन्तु एक स्वटकने वाली बात यह है कि मित्रपद शब्द केवल इन मुद्राओं पर क्यों है अन्य मुद्राओं पर क्यों नहीं है ? इसके अतिरिक्त मित्रपद का प्रयाग साधारणतया कही अन्यत्र देखने में नहीं आता । इससे अनुमान हाता है कि सम्भवतः आग्रय गण स्वतः कुछ छोटे छोटे मित्रों का सामूहिक सघ रहा होगा । आज अग्रवाल जाति में १८ गात्र प्रचलित हैं हो सकता है यह गात्र उन्हीं समूहों का व्यक्त करते हों । गात्रों का वास्तविक अर्थ हमने परिशिष्ट में स्वतंत्र रूप से व्यक्त किया है उसके आधार पर हम अनुमान कर सकते हैं कि यह सघ छोटे-छोटे समूहों के संगठन से बना था । हो सकता है यह मित्र पद उसी की आर सकेत करता हो ।

१ जुलैटिन आब द स्कूल आब ओरियन्टल स्टडीज भाग १ पृ २७६

२—वही प २८ ।



बम्बई प्रान्त के कुछ गुजराती अप्रवाल अपने को अगरोहा का मूल निवासी न मान कर आगर ( मालवा ) का निवासी मानते हैं ।<sup>१</sup> हिन्दी के सुप्रसिद्ध व्याकरणाचार्य गुजराती अप्रवाल प० अम्बिका प्रसादजी बाजपेयी भी इसका समर्थन करते हैं। आपका कहना है कि अप्रवाल शब्द आगरवाल से ही बना है। इसके लिए आप कहते हैं कि हिन्दी के शब्दों में प्रत्यय लगाने पर दीर्घ स्वर ह्रस्व हा जात हैं जैसे 'बूढ़ा + आपा से 'बुढ़ापा' बना 'बूढ़ापा नहीं। इसी प्रकार आगर और बाल मिलकर आगरवाल न हाकर अगरवाल शब्द बना।<sup>२</sup> यह धारणा व्याकरण सम्मत हाते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से नितान्त भ्रमात्मक है। जनपद की व्याख्या करते समय हम बता चुके हैं कि राज्य का निर्माण जन से हाता था। यदि कोई शक्तिशाली राज्य आक्रमण करके उस देश का जीत ले ता उसकी कोई विशिष्ट हानि नहीं होती थी। जनता उस देश का छाड़कर कहीं और जाकर बस सकती थी। देश के छिन जाने पर भी राज्य जीवित रह सकता था। महत्व बरानेवाली भूमि का न था वरन महत्व जन का था। अस्तु डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल ने लिखा है कि बड़े बड़े साम्राज्यों के विकास हाने पर अनेक गणों ने साम्राज्यवाद की आधीनता स्वीकार न कर अपने हरे भरे शस्य श्यामल पचनद

१—आर ई एन्वावेन ट्राइम्ब एन्ड कास्टस आफ बाम्बे १९२२ भाग ३ पृ ४२६।

२—अप्रवाल वष १ खण्ड २ संख्या ३ पृष्ठ ६५६।

प्रदेश को छोड़ दिया और मरु भूमि का आश्रय लिया। वहाँ शक्ति-शक्ती साक्षात्कारों के आक्रमण से बचकर अपनी स्वाधीन सत्ता का रक्षा कर सकना सम्भव था। इस तरह अपना पुराना निवास स्थान छोड़ कर राजपूताना में जा बसने वाले गणों में पूर्वोद्धिखित मालव और शिवि गण भी थे १।

आगर इसी मालव गण द्वारा नवनिर्मित मालवा प्रदेश में उज्जयिना से लगभग ४० मील उत्तर पूव स्थित एक छोटा सा नगर है। जान यह पढ़ता है कि आश्रय गण और अम और मालव मालव गण में पर्याप्त घनिष्टता थी। फलतः जब लगभग १५ ई० पू मालव लोग पंजाब छोड़ राजपूताना की ओर चले तो उनके साथ आश्रय गण के भी कुछ लोग आए और यहाँ आकर बस गये और अपने निवास स्थान का नाम आगर रख लिया। इतिहास में इस बात के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं कि एक स्थान के निवासी जब दूसरे स्थान गए तो उसका भी अपने पूव स्थान का नाम दे डाला। यथा मथुरा (शौरसेन देश), मथुरा (पाण्ड्य देश) और मथुरा (कम्बोडिया) को एक ही जाति के लोगों ने बसाया था। मालवों और आश्रयों की घनिष्टता का एक प्रमाण श्री जयचन्द विशालकार की पुस्तक भारतभूमि और उसके निवासी' में मिलता है। उन्होंने इराकोचीन के आधुनिक प्रान्त लवा का प्राचीन नाम मालव' और उसके

१—काशी प्रसाद जायसवाल हिन्दू राजतन्त्र प २५५।

निकट के एक नगर 'हानाई' का नाम 'अप्र नगर' लिखा है। उनके कथनानुसार ये दक्खिनीन भारतीय बस्तियाँ थीं।<sup>१</sup> इससे अनुमान होता है कि मालव और आग्नेय लोग न केवल मध्य भारत में ही साथ-साथ आकर बसे बरन् सुदूर पूव में भी साथ-साथ गये। इसलिए हा सकता है कि अपनी स्वतन्त्र प्रियता के कारण आग्नेय गण का जो भाग आगर चले आए हों उनकी वर्तमान सतान वर्तमान गुजराती अप्रवाल हों।

# परिशिष्ट

१

## नागवंश

अप्रबाल जाति के विकास पर लिखी जाने वाली पुस्तक के लिए जितनी सामग्री अब तक प्राप्य है, उसके अनुसार अब अधिक कुछ लिखने की गुंजाइश नहीं है। किन्तु अप्रबाल जाति वाल जाति अपने को मातृपक्ष से नागों की और नाग सतान मानती है और नागों को अपना मामा कहने में अभिमान मानती है और इसी कारण वे लोग चाहे वैष्णव शैव या जैन कोई भी हों, सर्पों को नहीं मारते। मारना तां दूर रहा उसे चोट पहुँचाना या सताना भी बुरा समझते हैं। अनेक स्थानों पर अप्रबाल लोग अपने मकान के दोनों ओर प्रतिमा बनाते हैं और उनकी पूजा करते हैं। उनकी स्त्रियाँ नागपञ्चमी को साँप के बिलों की पूजा करती हैं। सर्पों को इतना महत्व देने का क्या कारण है, यह अप्रबाल जाति के इतिहास का एक अपेक्षित विषय है। हम लगे हाथों इस पर भी एक दृष्टि डाल लेना उचित समझते हैं।

किंवदन्ती प्रचलित है कि राजा अप्रसेन ने नागकन्या कुमुद तथा कालपुर के नागराजा महीधर की कन्याओं से विवाह किया था <sup>१</sup>। उन्होंने अपने पुत्रों का विवाह भी बिरानन

किंवदन्तियों या वास्तुकि अथवा अनन्तदेव या दशानन नाम के नाग राजाओं की कन्याओं से किया था <sup>२</sup>।

इन नाग कन्याओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे सदैव अपन सर्पिणी रूप में रहती थीं इससे उनके पति उनसे बहुत घबराते थे और उनके निकट नहीं जाते थे। वे नाग कन्याओं वर्ष में केवल एक दिन श्रावण शुक्ल ५ का अपना सर्पिणी का चोला उतार कर झी बन कर तालाब में स्नान करतीं और पूजा करती थीं। एक दिन जब वे स्नान करने गइ ता लागों ने उनका सर्पिणी का चोला जला दिया और वे पुन सर्पिणी न बन सकीं । उन्हीं नाग कन्याओं की सतान यह अप्रबाल जाति है। इस किंवदन्ती को यदि हम ज्यों का त्यों मान लें ता क्या कोई सर्पिणी से विवाह करने की कल्पना कर सकता है ? यह एक असम्भव एवं अप्राकृतिक सी बात है जा मूलता से परिपूर्ण है।

वास्तुतः बात यह है कि नाग एक जाति का नाम है जा आयों

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अंगरवालों की उत्पत्ति पृ ३।

२. श्री विष्णु अप्रसेन वंश पुराण भूतखण्ड पृ १७ अप्रसेन जी का जीवन चरित्र पृ १६

३. श्री विष्णु अप्रसेन वंश पुराण भूतखण्ड पृ ३४ अप्रसेन जी का जीवन चरित्र पृ २१ २४।

के प्रदेश से पूब से ही भारतवर्ष में निवास करती थी। अनुमान किया जाता है कि वह कोई आर्येसर जाति थी।

नाग जाति यदि वह आर्य जाति होती तो आर्यों के प्राचीन साहित्य में इसकी कहीं न कहीं यथार्थ चर्चा अवश्य आती। सामान्य मत यह है कि आर्यों से पहले जो जातियाँ यहाँ बसी थीं वे द्रविण थीं और उन्हें आय दस्तु कहते थे। किन्तु कुछ लोगों का कहना है कि द्रविणों से भी पहिले यहाँ मनुष्यों की अन्य जातियाँ बसती थीं उनमें एक नाग जाति भी थी।

जान यह पड़ता है कि अन्य जातियों के समान आरम्भ में नाग लाग भी सर्वप्रथम पहाड़ जगल तालाब आदि के समीप रहते रहे होंगे। और सपपूजक होकर अपने शरीर के

टोटेम ऊपर और आभूषणों में सर्प का चिह्न अङ्कित करते रह होंगे। अति प्राचीन काल से नाना देशों में एक विशेष चिह्न या लाक्षण से परिचय देने का रिवाज दिखाई देता है। यह चिह्न साधारणतः या तो किसी जीव जन्तु के होते हैं या वृक्ष लता और पुष्पों के। जो वस्तु लाक्षण या चिह्न रूप में व्यवहृत हाती है वह वस्तु उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति के अद्वा और सम्मान की चीज हाती है। अंग्रेजी में इस टोटेम कहते हैं। आर्यों की पूर्ववर्ती अनेक जातियों में भी टोटेम प्रचलित था और वे अपना परिचय किसी जीवजन्तु या वृक्षलता आदि से दिया करती थीं। इसका प्रमाण ऋग्वेदादि प्राचीन ग्रन्थों में काफी मिलता है १। आज

भी प्राचीन जनार्थ जातियों के बराबर जातियों के कितने ही नाम एवं मात्र इस प्रकार के पाये जाते हैं। टाटेम नामधारी जातियों का विशद विवेचन आचार्य चित्तिमाह्न सेन शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष में जाति भेद' में किया है \* । नाग नाम भी इसी प्रकार का नाम है। उनके इस प्रकार के किन्हीं कारणों से लोगों में यह भ्रमपूर्ण धारणा फैल गई होगी कि वे लाग अनुष्य नहीं अपितु सप हैं।

जो भी हो जायों से पूव भारतवर्ष में नाग जाति अति प्रबल थी और जायों के प्रवेश के पश्चात् भी उसकी निवास-स्थान विशेष महत्ता थी। काश्मीर से लेकर लका तक और पेशावर से ब्राह्म देश तक नाग जाति के चिन्ह फैले हुए हैं। यही नहीं सुमात्रा जावा आदि देशों में भी इस जाति का प्रवेश रह चुका है। इस प्रकार दूर तक फैले हुए नाग जाति का मूल स्थान कहाँ था इसका निणय करना बहुत कठिन है। नागों के मूल स्थान के सम्बन्ध में प्रचलित पुरातन एवं प्रबलतम जा आख्यायिका है, उसका यदि विश्लेषण किया

---

\* पृष्ठ १५, ११५ : इस विषय पर विस्तृत अध्ययन के लिए रिजले कृत पीपुल आफ इन्डिया पृ ६३ १ २ डब्लू कक कृत ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ द एन डब्लू पी एण्ड अवध भाग १ पृ २ अनन्तकृष्ण एयर कृत माइसोर ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स पृष्ठ २४२ २६२ ई बर्स्टेन कृत कास्ट्स एण्ड ट्राइब्स आव सर्न इन्डिया तथा मेकडानल कृत वैदिक माइन्सलोजी पृ १५३ देखना उचित होगा।

जाये तो नाग लोग दक्षिणालय कहे जा सकते हैं। नाग नीचे के लोक के रहने वाले हैं, उसका पाताल लोक है, इस प्रकार पुराणों ने बार बार घोषित किया है। उत्तर निवासी आर्यों के लिए यह पाताल लोक दक्षिण देश के सिवा और कौन सा देश हो सकता है ? लेकिन कुछ लोग अमेरिका, आस्ट्रेलिया न्युफाउण्डलैण्ड आदि में से किसी को पाताल लोक मानते हैं। कहीं कहीं पूर्वी बंगाल अथवा आसाम के पूर्वी भाग का भी पाताल लोक कहा गया है ? कुछ जाग सिंध प्रान्त में पाताल का अस्तित्व बताते हैं ?

इस जाति के लोगों का सर्व प्रथम उल्लेख भारतीय इतिहास मे समुद्र मंथन की कथा में मिलता है। यदि पुराणों के द्राष्टान्तिक वणन को भलग रख दिया जाय तो ज्ञात हाता है पौराणिक कि आर्य दैत्य और नाग लोगों ने समुद्र द्वारा उल्लेख ससार यात्रा का विचार किया। इस पर शेषनाग ने जहाज बनाने के लिए मन्दराचल से इतनी अधिक लकड़ी मँगवाई कि जान पड़ने लगा कि समुद्र के सामने समूचा पहाड़ आ गया है। नागों के दूसरे सरदार वासुकि ने रस्सी मस्तूल आदि लगाकर जहाजों का सजाया और तब नागों की

१ देवार्द्र पांडुरंग राय नाग जाति सम्मेलन पत्रिका भाग २५ संख्या ६ १ ।

२ मिश्रकन्दु भारतवर्ष का इतिहास [ प्रथम संस्करण ] भाग १ पृष्ठ ६४ ६७ ।

३ वही [ तृतीय संस्करण ] भाग १ पृष्ठ ५८ ।



सहायता से दैत्य और आस्य लोगों ने सारे संसार में समुद्र यात्राओं की और इन यात्राओं में उन्हें भ्रँति भ्रँति के पदार्थ प्राप्त हुए जिनमें १४ रत्न प्रधान थे। पुराणों में नागों के सम्बन्ध में जा कुछ भी वर्णन प्राप्य है उससे जान पड़ता है कि इन लोगों की सबैब ही आर्य लोगों से घनिष्ठता रही और राजा जनमेजय के अतिरिक्त किसी भी आर्य राजा से इनकी भारी लड़ाई नहीं हुई। इस बात की पुष्टि इस बात से भी हाती है कि इस जाति का आर्यों से विवाहादि सम्बन्ध खूब प्रचलित था। और इसके पर्याप्त निर्देश प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्य हैं। सूयवशी राजा युवनाश्व और हर्यश्व की बहन धूमवण नामक नाग का व्याही गई थी। उसीकी पाँच कन्याओं का विवाह हर्यश्व के दत्तक पुत्र यदु से हुआ था। रामायण युग में मेघनाथ की स्त्री सुलाचन नामक नाग कन्या थी। रामचन्द्र के पुत्र कुश ने एक नाग कन्या से विवाह किया था। महाभारत काल में भीम का जब दुर्बोधन ने विष देकर नदीमें फेंक दिया था ता नाग लाग उसे चठाकर ले गये थे। उस समय नागराज ने भीम को देखकर कहा था कि यह मरे दौहित्र का दौहित्र है। नागराज की कन्या से सूरसेन हुए थे। सूरसेन की पुत्री कुती थी। श्रीकृष्ण के नाना उग्रसेन की रानी नाग कन्या थीं। अर्जुन की भार्या और वभु वाहन की माता चित्रागश नागराजकुमारी थी। अर्जुन की दूसरी पत्नी बल्लूपी भी नागपुत्री थी। इनके अतिरिक्त पुराणों में कितने ही ब्राह्मण ऋषियों के नागस्त्रियों से परिणय होने की कथाएँ दी हैं। इस सन्दर्भ में जरत्कारु ऋषि का वृत्तान्त प्रसिद्ध है। नाग-

राज वासुकि की बहन से इनका सम्बन्ध हुआ है और उनसे उत्पन्न पुत्र पुत्र्यन्नाक आस्तिक ऋषि थे । कथा सरित्सागर से ज्ञात होता है कि बृहत्कथा के निर्माता गुण्यह्वय की माता ब्राह्मण कुमारी और पिता नागराजकुमार थे । दक्षिणात्य ग्रन्थ मण्डियेगल्लय के अनुसार चोल राजा वरुण ऋवेयरकिछी ने बीलबलय नाम्नी नाग कन्या से विवाह किया था । इस प्रकार हम देखते हैं कि नाग जाति का आर्यों से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनके महापुरुषों ने आर्यों के इतिहास एवं पुराणों में प्रमुख स्थान प्राप्त किया था । वैदिक काल में इनमें से कितनों ने ब्राह्मण और ऋषि का पद प्राप्त किया था । ऋग्वेद के दशम मण्डल के ९४ वें सूक्त के रचयिता कदू के पुत्र नागवंशीय अर्बुद थे । तैत्तरेय संहिता के अनुसार ऋग्वेद के १० १८९ सूक्त की रचयित्री ऋषि हैं सर्पराज्ञी । इसी प्रकार १० ७६ सूक्त के ऋषि हैं नागवासीय इरावत के जरत्कण २ । नागों के कुलसंस्थापक शषनाग का विष्णु की शैया और पृथ्वी का आधार कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । इसी प्रकार अनन्त नामक दूसरे प्रमुख नाग को तो परमात्मा की विभूति कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ३ । और अब तक भाद्रपद की चतुदशी का अनन्त की पूजा हाती है ।

- 
- १ कदू वा पुत्रस्य सर्पस्य अर्बुदस्यार्षम् । सामय
  - २ इरावतः पुत्रस्य सर्पकाले जरत्कर्णस्यार्षम् । सामय
  - ३ अनन्तश्चक्रस्त्वि न्यासार्थम् । पीता ।

इतिहास में नागों का उल्लेख एक वंश के रूप में हुआ है। इनका इतिहास प्रायः एक प्रकार से अब तक अज्ञात सा रहा है स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने उनके इतिहास का मुद्रा एव पौराणिक उल्लेखों के आधार पर परिश्रमपूर्वक उद्धार किया है<sup>१</sup>। उनके कथनानुसार नागवंश का सब प्रथम ज्ञात नागवंश का उत्थान विदिशा में हुआ था जो शुंगों के शासनकाल में उपराज या राज प्रतिनिधि का प्रसिद्ध निवास स्थान या केन्द्र था। तद्स्थान के नाग शासकों की नामावली इस प्रकार ज्ञात हाती है —

शेष	ई पू	११०—९
भोगिन		९०—८०
रामचन्द्र	,	८—५०
धमबमन		५०—४
बगर		४०—३१

इसके पश्चात् जान पड़ता है कि इनका शासन कुछ काल के लिए छिन्न भिन्न हो गया और व अपनी राजधानी पद्मावती ले आय और वहाँ निम्न शासक हुए—

भूतनन्दी	ई० पू०	२—१०
शिशुनन्दी		१—२५ ई०
यशानन्दी	—	२५ ई०—३० ई

१ डा० काशी प्रसाद जायसवाल—अन्वकार युगीन भारत ।

मुरुषदात	}	३० ई०—७८ ई०
उत्तमदात		इनके सम्बन्ध में अभी तक
भवदात		निश्चित नहीं हो सका है कि किस
शिवनन्दी		क्रम से बैठे।
या		
शिवदात		

इनके शासन के अन्तिम काल में भारत में कुशाण शासकों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया और ८० ई० से १७५ ई० तक राज्य करते रहे। इस बीच नाग लोग पद्मावती और विदिशा का निवास छोड़ मध्यप्रदेश में चले गए और होशंगाबाद—जबलपुर के पहाड़ों और जगलों में रहित रहकर वे लगभग पचास वर्ष से अधिक समय तक राज्य करते रहे। पश्चात् कुशाण साम्राज्य के अन्तिम काल में वहां से निकल कर बघेलखण्ड होते हुए गया तट पर कान्तिपुरी पहुँचे और काशी अथवा आसपास उन लोगों ने अश्वमेधयज्ञ किया और वहीं उन लोगों का राज्याभिषेक हुआ। फिर कान्तिपुरी से वे लगभग पश्चिम की ओर बढ़े और पद्मावती और मथुरा पर अधिकार प्राप्त किया। और नवस्थापित नागवरा अपने अपने शासक नव के नाम पर नवनाग वरा के नाम से मुकारा जाने लगे। पीछे यही वंश भारशिववंश के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ।

इस वंश के प्रथम शासक नवनाग के सम्बन्ध में अनुमान किया जाता है कि वह कुशाणवंशी समुद्रदेव के साम्राज्यकाल में समुद्रप्रान्त के पूर्वी भाग में एक स्वतंत्रशासक की अर्द्ध-राज्य करता

था। उसका शासनकाल १४० ई० से १७० ई० तक अनुमान किया जाता है। उसके पश्चात् वीरसेन नाम शासक नवनाथ हुआ। उसने अपने राज्यकाल के पहले वर्ष से ही महाराज के समस्त शासनाधिकार अपने हाथ में कर लिया था। उसके सम्बन्ध में ज्ञात जाता है कि उसने कुशारणों को हटाकर मथुरा में फिर से हिन्दू राज्य स्थापित किया था। वीरसेन के उत्थान से केवल नागवश के इतिहास में ही नहीं बल्कि आर्यवत के इतिहास में भी एक नवीन युग का आरम्भ होता है। उसके राज्य विस्तार की सीमा समस्त सयुक्तप्रान्त और पंजाब का विशेष भाग अनुमान किया जाता है। इसने २१ ई० तक शासन किया। वीरसेन के पश्चात् इस वंश में निम्न शासक हुए —

१—हयनाग	२१०—२४५ ई
२—त्रयनाग	२४५—२५ ई
३—वर्हिनाग	२५०—२६ ई
४—चरजनाग	२६ —२९ ई
५—भवनाग	२८ —३१५ ई

भवनाग के पश्चात् इसवंश का शासन वाकाटक वंश के हाथ में चला गया। भवनाग ने अपनी कन्या का विवाह वाकाटक राजवंश के सम्राट प्रवरसेन के पुत्र गौतमीपुत्र से किया था। भवनाग के समक्ष कोई पुत्र न था इस कारण इस सम्बन्ध से उत्पन्न दौहित्र हद्रसेन प्रथम के हाथ इस वंशका शासन चला गया और उस वंशका उत्कर्ष हुआ।

अपने समय में भारतीय संत का इतना अधिक महत्व था कि वाकाटक वंशके, जो एक उच्च कोटिका साम्राज्य कुल था, राजकीय लेखों में इस विवाह सम्बन्ध का वास्तविक मरसिम उल्लेख किया गया है और उनका गुण गाया गया है। बात भी कुछ ऐसी ही थी। कुराण शासकों को भारत से निकाल बाहर करना एक सामान्य बात न थी। वे ऐसे शासक थे कि जिनके पास बहुत अधिक रक्षित शक्ति एव सेना थी और वह रक्षित शक्ति उनके मूल निवासस्थान मध्य एशिया में रहती थी जहाँ से उनके सैनिकों को बहुत बड़े बड़े दल सदैव आया करते थे। इनका साम्राज्य बंधु नदी के तटसे लेकर बगाल की खाड़ी तक यमुना से लेकर नर्मदा तक और पश्चिम में काश्मीर तथा पंजाब से लेकर सिन्ध और काठियावाड़ तक और गुजरात सिंध और बलूचिस्तान के समुद्र तट तक भली भाँति स्थापित हागया था। ये लोग प्रायः सौ वर्षों तक बराबर यही कहते रहे कि हम लोग दैव पुत्र हैं और हिन्दुओं पर शासन करने का हमें ईश्वर की आर से अधिकार प्राप्त हुआ है। यों ता एक बार थोड़ी सी यूनानी प्रज्ञाने भी विरासत पारसी साम्राज्य के विरुद्ध सिर उठाया था और उसे ललकारा था, पर भारतीयों के नेता ने, जो अज्ञात वास से निकलकर तुर्कों की इतनी बड़ी शक्ति के विरुद्ध सिर उठाया था और उसे ललकारा था वह असीम वीरता का कार्य था। उन यूनानियों पर कभी पारसियों का प्रत्यक्ष रूपसे शासन नहीं था, पर अयुक्त भ्रान्त और

बिहार के नाम से आजकल पुकार जाने वाले प्रदेश पर कुशाण साम्राज्य का प्रत्यक्ष रूपसे अधिकार और शासन था। यह कई नाममात्र की अधीनता न थी जो सहज में दूर कर दी जाती और न यह केवल दूरपर टँगा हुआ प्रभाव का पर्दा था जो सहज में फट डाला जाता। यहाँ तो प्रत्यक्ष रूपसे ऐसे बलवान और शक्तिशाली साम्राज्य शक्ति पर आघात करना था जो स्वयं देशमें उपस्थित थी और प्रत्यक्ष रूपसे शासन कर रही थी। भारशिवो ने ऐसी शक्ति पर आक्रमण किया और इतनी सफलता से आक्रमण किया कि हम देखते हैं कि वीरसेन के उत्थान के कुछ ही समय बाद कुशाण लोग गंगा तटसे पीछे हटते हटते सरहिन्द के आस पास पहुँच गए थे। भारशिवों ने कुशाण राजाओं का इतना अधिक दबाया था कि अन्त में उन्हें सासानी सम्राट शापूर ( २३६-२६९ ई० ) के संरक्षण में चला जाना पड़ा। इस स्वतन्त्रता स्थापक वंशके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इस वंशके लोगोंने शिवलिंग का अपने कंधे पर बहन करके शिवका भली भाँति परितुष्ट किया था, जिससे वे भारशिव नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने दश अश्वमघ यज्ञ किए थे।

नागों की शासन प्रणाली सघातमक थी और भारशिववंश उस शासन प्रणाली का नेता था। उनके अन्तर्गत प्रतिनिधि स्वरूप शासन करने वाले अन्य कई वंश और प्रजा शासन प्रणाली तन्त्रात्मक राज्य सम्मिलित थे। पद्मावती और मथुरा में भारशिवों द्वारा स्थापित वंश की दो

साम्राज्ये थीं जो क्रमशः टाक-वंश और यहु कहा-कहा-वंशों का पचासवीं स्थित टाक-वंश में निम्न शासक हुए प्राप्त होते हैं:—

	भीमनाम	२१०—२३० ई०
टाक-वंश	स्कन्दनाग	२३०—२५० ई०
	बृहस्पतिनाग	२५०—२७० ई०
	व्याघ्रनाग	२७०—२९० ई०
	देव नाग	२९०—३१० ई०
	गणपतिनाग	३१०—३४४ ई०

ये लाग एक प्रकार से स्वतन्त्र शासक थे और भारशियों के अधीन उसी प्रकार थे जिस प्रकार कोई राज्य किसी साम्राज्य के अन्तर्गत होता है। ये लाग अपनी इस स्वतन्त्रता का उपयोग समुद्रगुप्त के समय तक करते रहे। समुद्रगुप्त के प्रथम आर्यावत् युद्ध में गणपति नागके मारे जाने पर इस शासक वंश का अन्त हुआ। गणपति नाग धारा ( पश्चिमी मालवा ) का स्वामी कहा गया है।

मथुरा में राज्य करने वाले वंश में जा यहु नाम से प्रसिद्ध है, कीर्तिचेण ( ३१५-३४० ई० ) और नागसेन ( ३४०-३४४ ई० ) केवल दो शासकों के नाम प्राप्य हैं। इन दो वंश राजाओं के पूव और राजा हुए होंगे पर इनके नाम प्राप्य नहीं हैं ये लोग प्रत्यक्षरूपसे भारशियों के अधीन और शासन में थे। नागसेन भी समुद्रगुप्त के प्रथम आर्यावत् युद्ध में मारा गया। अम्बाला ( पंजाब ) में शुभ नामक स्थान में भी एक नाग वंश राज्य करता था जो भारशियों के



आधीन और शासन में था। इस वंशके दो शासक मागध ( ३२८-३४८ ई० ) और महेश्वरनाम ( २४८ ३६८ ई० ) का पता लगता है। महेश्वरनाम लाहौर की एक मुहरमें महाराज पद से विभूषित हैं। कुलन्दाहर जिले के इन्दुपुर में या उसके आसपास एक और वंश राज्य करता था। इस वंशके केवल एक शासक मातिल ( ३२८ ३४८ ई० ) का कुछ पुरातात्विक सामग्रियों से पता लगता है। यह प्रान्त अन्तर्वेद ( गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश का पश्चिमी भाग ) कहा गया है, यहाँ एक अलग गवर्नर वा शासक राज्य करता था। मातिल सम्भवत इसी प्रान्त का शासक था। इसी प्रकार अहिछत्र में भी एक शासक था जिसका नाम अच्युत वा अच्युतनन्दी ( ३२४ ३४४ ई ) था। पर यह स्वतन्त्र न होकर अपने समय में वाकाटकों के अधीन था। इन शासकों के पश्चात् भी पाँचवी शताब्दी तक कुछ नाग राजाओं के अस्तित्व का पता लगता है जो स्कन्दगुप्त के करव थे। गुप्त काल में सम्भवत इनके सम्मान में अन्तर नहीं आया था क्योंकि हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने कुवरनागा नामक एक नाग राजकुमारी के साथ विवाह किया था। कन्हैया की राजतरंगिणी में कश्मीर के नाग शासकों का इतिहास लिखा हुआ है जो आठवीं शताब्दी में कर्कोट वंशके नामसे शासन करते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागवंश इतिहास के एक दीर्घ काल तक एक वैभवशाली वंश था। इस वंशसे सम्बन्ध जोड़ने में लोग अत्यन्त गौरव मानते रहे हैं। इस ऊपर कहनी चुके हैं

किं भारतवाज गौरीव त्राहत्या वाकाटक वीरा इत वंराके संभव जयने  
 विवाह सम्बन्ध की चर्चा करते हुए नहीं करता ।  
 राजमैलिक हमके अतिरिक्त पल्लवभादि भारत के अन्य अनेक  
 महत्व वंशोंके शिला लेखों में भी फर्जीन्द्रसुता एवं नाग  
 कन्यार्यों के साथ विवाह करने की बातको बड़े गर्व  
 और गौरव के साथ लिखी गई है । ऐसी अवस्था में यदि अश्ववाल  
 जाति भी अपने का नागवशसे सम्बन्धित कहने में गौरव मानती  
 है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

कुशग्रण्य शक्ति का सामना करने के लिए भारशिवों ने यह  
 नीति अग्रण्य की थी कि वे विविध राज्यों की स्वाधीनता का पुन  
 र्द्वार कर उसके साथ मैत्री स्थापित करते थे और  
 उसको स्थायी रखने के लिए अपनी राजकुमारियों  
 का विवाह उनके यहाँ कर दिया करते थे ।

अगराहा में कुषाण कालीन मुद्रायें बहुतायत से पाई जाती हैं  
 तथा वहाँ जम किंबदन्तियाँ प्रचलित हैं उनसे  
 ज्ञान पड़ता है कि कुषाण सम्राट विमकवर्गस का  
 अगरोहा के साथ विशेष सम्बन्ध रहा । इससे

१—पंजाब में अनेक किंबदन्तियाँ राजा रिसाल के नाम से प्रसिद्ध हैं  
 जिनका कि सम्बन्ध अगरोहा से बताया जाता है । अशुत जयचन्द विद्यालंकार  
 ने अपनी पुस्तक भारतीय इतिहास की स्वरूपा [ पृष्ठ ६२६ ] में इस राजा  
 रिसाल की विमकवाप्त से मिला कर एक बताया है । राजा रिसाल के सम्बन्ध  
 में अगरोहा से सम्बन्ध रखने वाली दो किंबदन्तियाँ इस प्रकार हैं :—

प्रकट होता है कि अगरोहा कुषाण सम्राटों के आधीन रहा होगा। ऐसी अवस्था में बहुत सम्भव है कि आप्त्रेय गण का भी उद्धार आरिशियों ने किया हो और अपनी कुछ कुमारियों का विवाह वहाँ के प्रमुख लोगों के साथ कर दिया हो और उसी घटना को महत्व देने के लिए नाग कुमारियों के साथ विवाह करने की बात बड़े गव से कही जाती हो।

अलक्षान्दर के आक्रमण के १४५ वर्ष बाद अगरोहा में भयानक आग लगी और नगर एक दम नष्ट होकर केवल राक्ष का ढेर रह गया। यह आग एक साधू के श्राप से लगी थी। उसने शाम से पहले सूचना करा दी थी इससे कुछ लोग पहले ही नगर छोड़कर भाग गए। भागनेवालों में हरभज्याह नामक क्षातिप्रना व्यापारी भी थे। उन्होंने एक प्रतिद्वन्दी व्यापारी के ताने से आहत होकर अगरोहा को फिर से आबाद करने का निश्चय किया और प्रतिज्ञा स्वरूप अपनी मूँछ और पगड़ी उतार दी। और अपने मित्र राजा रिसाल्द की सहायता से उसको दुबारा आबाद किया। [ श्री विष्णु अग्रसेनवंश पुराण भूतखंड पृष्ठ ५३ ५४ । ]

दूसरी किंवदन्ती के अनुसार रिसाल्द सियालको का राजा था और उसके दीवान का नाम महिता था। महिता का विवाह अगरोहा के हरभज्याह की पुत्री शीला से हुआ था। शीला बहुत ही पतिपरायणा गुणवती और सदान्धारिणी थी। रिसाल्द उसके गुणों की प्रशंसा सुनकर उसपर मुग्ध हो गया और उससे स्वयं विवाह करना चाहा। किन्तु महिता के निकट रहते यह सम्भव न था अतः रिसाल्द ने उसे रोहतासगढ़ [ सम्भवतः रोहत ] भेज दिया। महिता शीला पर पूर्ण भरोसा करता था। वह उसे वहाँ छोड़ रोहतासगढ़ चला गया। जाने के बाद उसकी अनुपस्थिति में रिसाल्द अनुचित काम करने की चेष्टा करने लगा। वह रोज महिता के घर जाने लगा किन्तु जब

इसके अतिरिक्त ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि यह नागवंश वैश्यों का वंश था। यह बात डा० कारीप्रसाद जायसवालने 'अंजुभी मूल कल्प' नामक प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ १ के आधार पर प्रामाणिक रूपसे निर्धारित की है।

वह किसी प्रकार शीला को वश में न कर सका तो निराश होकर उसे बदनाम करने के लिए अपने नाम की छुदी अंगूठी उसके शयनागार में छिपा कर रख दिया। महिला जब रोहतासगढ़ से लौट कर आया तो एक दिन उसकी नजर उस अंगूठी पर पड़ी और उसे अपने पत्नी के आचारण पर संदेह होने लगा। उसने नाना प्रकार से शीला की परीक्षा ली फिर भी उसका सन्देह दूर न हुआ। इसी बीच शीला अपने पिता के घर चली गई। महिला को इस घटना से बड़ा दुःख हुआ और वह शीला के वियोग को सह न सका और वैरागी हो गया। इधर उधर भटकता हुआ वह अगरोहा पहुँचा और वहाँ निराशा में अपना प्राण त्याग दिया। शीला भी अपने पति के साथ सती हो गई। यह घटना जब रिवाल को मालूम हुई तो वह स्वर्ग अगरोहा आया और अपने सुयोग्य मन्त्री के वियोग में प्राण त्यागने की तैयारी करने लगा इतने में शुभ गोरक्षनाथ आगये और सच्चे प्रेमियों का स्नेह देखकर शिव पार्वती की प्रार्थना की और शीला तथा महिला को पुनर्जीवित कर दिया। [ द खिजण्ड आफ पंजाब से श्री सत्यकेतु विद्यालकार की पुस्तक अग्रवशक जति का प्राचीन इतिहास में उद्धृत । ]

## गोत्र

अप्रवाल जाति में १७॥ अथवा १८ गोत्र प्रचलित हैं। इनके विकास के सम्बन्ध में अप्रवाल जाति में कतिपय किंवदन्तियाँ हैं।

एक जनश्रुति के अनुसार अमसेन के १८ पुत्र हुए।

किंवदन्तियों में जब वे विद्याध्ययन के माग्य हुए तो उन्हें तत्का  
गोत्र लीन गुरुकुलों में भेजा गया। उस समय भारत

वर्ष में बड़े बड़े ज्ञानी ऋषियों के सत्तरह गुरुकुल

थे, जिनके अधिष्ठाता बड़े बड़े विद्वान ऋषि मुक्ति थे। उन्हीं ऋषियों के पास महर्षि पादशलि की आज्ञा से महाराज ने अपने एक-एक पुत्र का भेज दिया। महर्षि मग के आश्रम में सबसे बड़े और सबसे छोटे पुत्र का भेजा और शेष १६ पुत्रों को एक एक आश्रम में भेज दिया। इन पुत्रों ने जिस जिस ऋषि के आश्रम में शिक्षा पाई वही ऋषियों के नाम से उनका गोत्र प्रसिद्ध हो गया। एक ऋषि के आश्रम में दो पुत्र भेजे गए थे इस लिए दानों का एक ही गोत्र हाता था। किन्तु दानों वशावशों के पृथक् पहचान के लिए गोत्रों में पृथक्ता रखना आवश्यक था इसलिए एक का

गोत्र भिन्न रख कर आया कहा गया । दूसरा कथन यह है कि महाराज अमरसेन ने साढ़े सत्तरह यज्ञ किए, जिनका उत्सर्ग पहले प्रकरण में किया जा चुका है उन यज्ञों के पुरोहितों से साढ़े छत्तरह गोत्रों के नाम पड़े । एक कथन यह भी है कि अमरसेन ने १७ रानियों और एक दासी से विवाह किया था । प्रत्येक रानी के साथ बैठ कर उन्होंने एक-एक पुत्रेष्टि यज्ञ किया । प्रत्येक यज्ञ में जिस ऋषि को मुख्यप्राय मान कर यज्ञ किया उसी के नाम पर साथ ही रानी की सन्तान का नामकरण किया गया और उन्हीं ऋषि से यज्ञापनीत करा कर गोत्र की स्थापना की गई और उन ऋषियों की वेद शाखा और प्रवर भी मानी गई । पश्चात् जो वैश्य आत गए उनका १८ ऋषियों द्वारा सस्कार करा कर उनकी वेद शाखा स्थापित करते गये और उनका अपने एक एक पुत्र के नेतृत्व में अलग अलग यूथ निर्माण किया । वे ही बाद में गोत्र हा गए । दासी पुत्र के नेतृत्व में बनने वाले यूथ का गात्र आधा माना गया ।

विक्रमी शताब्दी के प्रारम्भ में अश्वघोष नामक एक प्रसिद्ध विद्वान और कवि हुआ है, जा कुषाण शासकों का धार्मिक सलाहकार था । उसने सौन्दरानन्द नामक एक काव्य अश्वघोष लिखा है, जिसमें उसने एक स्थल पर ऋषियों के गोत्र के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना की है । उसमें उसने एक स्थान पर लिखा है —

गौतम गोत्रीय कपिल नामक तपस्वी मुनि अपने महात्म्य के कारण दीर्घ तपस् के समान और अपनी बुद्धि के हेतु शुक और अगिरस के समान थे । उनका आश्रम हिमालय के पार्श्व में था । कई इच्छ्वाकु राजपुत्र मातृद्वेष के कारण और अपने पिता के साथ की रक्षा के निमित्त राजलक्ष्मी परित्याग कर रहे । कपिल उनके उपाध्याय ( गुरु ) हुये जिससे जा राजकुमार पहले कौत्स गात्रीय थे अब अपने गुरु के गोत्र के अनुसार गौतम गोत्रीय कहलाये । इस बात को पुष्ट करते हुए अश्वघोष ने व्यक्त किया है कि एक ही पिता के पुत्र भिन्न भिन्न गुरुओं के कारण भिन्न भिन्न गोत्र के हो जाते हैं । जैसे कि बलराम का गार्ग्य और कृष्ण का गौतम हुआ ।

अश्वघोष के इस कथन से किंवदन्ती वाली बात की पुष्टि होती है । किंतु यह बात विश्वसनीय नहीं है । यह बौद्ध लेखक कृष्ण और बलदेव को भले ही दा गोत्र का बतावे किन्तु पुराणों में इसका कुछ पता नहीं चलता । हरिवंश और भागवत की कथाओं से स्पष्ट ज्ञात होता है कि दानों ने एक ही गुरु अर्थात् सान्दिपणि से शिक्षा पाई थी जिससे निश्चित जान पड़ता है कि सौन्दरानन्द का कथन मिथ्या है । हो सकता है प्रक्षिप्त भी हो । बौद्ध लेखकों ने आर्य अनुश्रुतियों को बहुत ही भ्रमात्मक रूप से व्यक्त करने का यत्न किया है । उदाहरणार्थ उन्होंने सीता के सम्बन्ध में लिखा

१—सर्ग १ श्लोक १ ४ ५ १८ २१ २२ ।

२—सर्ग १ श्लोक २१ ।

है कि वे राम की भार्या और भगिनी दोनों थीं<sup>१</sup>। भाई बहन के विवाह की कल्पना हमारे लिए अकल्पनातीत है। हम इस पर विश्वास नहीं कर सकते।

याज्ञवल्क्य स्मृति में आचाराध्याय के विवाह प्रकार में लिखा है कि—जो कन्या नीरोग भाई वाली भिन्न ऋषिगोत्र की हो और माता की तरफ पाँच पीढ़ी तक और पिता याज्ञवल्क्य स्मृति की तरफ सात पीढ़ीतक जिससे सम्बन्ध न हो उससे विवाह करना चाहिये<sup>२</sup>। इस आदेश के देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि गोत्र पुरोहितों के नहीं होते थे बरन् निजी होते थे। यदि पुरोहितों के ही गोत्र लोगों के होते ता याज्ञवल्क्य भिन्न गोत्र का आदेश न देते। पुरोहित के बदल जाने पर हर समय गोत्र बदल जाया करता और उसका कोई महत्व नहीं रहता। अनेक शिलालेखों में अनेक राजाओं ने अभिमानपूर्वक अपने गात्रों का उल्लेख किया है<sup>३</sup>। इससे स्पष्ट है कि गोत्रों का विकास पुरोहितों से नहीं हो सकता। वह स्पष्टतः कुल द्योतक है।

प्राचीन आर्यों ने अपने पूर्वजों की स्मृति रक्षा के लिए गोत्र और प्रवर प्रणाली का निर्माण किया था जो सप्तर में अन्यत्र

१—दशरत्न आतक।

२—अरोगिणीं आशुमतीं अक्षयाम्नाथं गोत्रजाम्।

पञ्चमात्सहामाकुञ्जं मातुतं पितृतस्तथा ॥ श्लोक ५२ ॥

३—भारहुत का तोरण लेख कर्निगहन भारहुत पृष्ठ १२७-१३०।



कहीं-कहीं पाया जाता है। शक्येक धार्य के लिये वह आकार्यक किया गया कि शक्येक धार्मिक कृत्य के अवसर पर अपने शक्येक और प्रवर का उच्चारण करे। इस प्रकार शक्येक शक्येक और प्रवर भ्रज तक मात्र और प्रवर के रूप में अपने पूजार्जों का शक्येक का नित्य प्रति वंश परम्परागत स्मरण करते आ रहे हैं। इसलिए हमें जातियों के विकास के समान ही गोत्रों पर भी ध्यान देना हागा। आय जाति के हाग चाहे किसी वर्ण के हों चाहे उनमें कोई भव उपभेद हा उनके गात्रों के विकास का भी मूल एक है।

महाभारत के अनुसार मूल गोत्र चार हैं—अगिरस कश्यप, वशिष्ठ और भृगु<sup>१</sup>। इन गात्रों का समथन अनेक प्रवराध्याय और सूत्रों से भी हाता है। इसका अथ यह निकलता मूल गोत्र है कि जब भारत मे आर्यों का प्रथम अथवा सूयवशी दल आया ता उसमें भृगु, अगिरस वशिष्ठ और कश्यप चार कुल के लाग थे। इहीं को ब्रह्मा का मानस पुत्र कहा गया है। ये ही लाग आय वर्ग अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के जन्म प्रदाता हैं।

प्रवरमञ्जरी में मूल गात्रों के रूप में ८ नामों का उल्लेख हुआ है। इसमें बौधायन कथित सप्तर्षियों अर्थात् जमदग्नि, गरुड्राज

१—मूल गोत्राणि कश्यपि अगिरसश्च वशिष्ठश्च भृगुश्च ।

अगिरा कश्यपश्चैव वशिष्ठो भृगुरेव च ॥

यद्वाच्यते, अग्नि पर्क, अथवा ३५८ ।

विश्वामित्र अत्रि, गौतम, अश्विनी और अश्विन के अतिरिक्त अगस्त्य का नाम है<sup>१</sup> ।

महाभारत कथित भृगु का नाम इसमें नहीं है। बल्कि उनके स्थान पर उनके चरित्र जमदग्नि का नाम है। इसी प्रकार अश्विन के स्थान पर उनके दा पौत्रों भरद्वाज और गौतम का नाम है। अस्तु—८ में अत्रि विश्वामित्र और अगस्त्य रह जाते हैं। इनमें अत्रि के लिए ता स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे भारत में आने वाले द्वितीय दल अर्थात् चन्द्र कुल के छातक हैं क्योंकि चन्द्र के पिता का नाम अत्रि कहा गया है और आज तक चन्द्रवंशी अधिकांश रूप में अत्रिगात्रीय हैं। अगस्त्य एक दम नये व्यक्ति हैं। किन्तु वे भी वैदिक समय में ही हुए क्योंकि वेदों में अन्तर्गत अश्वि के रूप में हुआ है। विश्वामित्र आय अश्विन हैं जो अपने सुकृत्यों से ब्राह्मण और प्रवर ऋषि बन गये। अभिनव माधवीय गोत्र प्रवर नियम में इन आठ के साथ महाभारत कथित भृगु और अश्विन का मिला कर गात्रों की संख्या दस कही गई है। इस प्रकार महाभारत में सुरक्षित गात्रों के प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि प्राचीन ऋषि ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के जन्मदाता हैं और

१—जमदग्निभरद्वाजो विश्वामित्रोत्रिगौतमौ ।

कश्चित्कथयन्नायस्था मुनयो गोत्र करिणः ॥

एतेषां चान्यपत्यानि तानि गोत्राणि मन्यते ।—प्रवर मन्वरी ।

सखाकां सप्तर्षीणांममकांममकां चदमन्व । सप्तर्षीणांममकांममकां ॥

—कौशाभ ।

इन्हीं चार कुलों से आय गात्रों का विकास हुआ<sup>१</sup> और आज गोत्रों की संख्या असंख्य हो गई है ।

इस निष्कर्ष का समर्थन प्रवर का अध्ययन करने से भी होता है। श्रीयुत स्त्री वी० वैद्य ने बहुत ही छानबीन के पश्चात् बताया है

१—कुलों से गोत्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मत भेद है। वे लोग कहते हैं कि प्राचीन समय में गोत्र का अर्थ गाय बाँधने या रखने का बाड़ा गोष्ट या गोशाला था। उस समय बड़ी बड़ी बस्तियाँ या नगर कम थे जङ्गल अधिक था लोंग पशु अधिक पालते थे और उसी के अनुसार वे धनी और निधन आँके जाते थे। इसलिये वे उनके घरने का सुनीता देख कर किसी स्थल विशेष में बस जाते थे और सबके लिए अपने गोष्ट बनाना सम्भव न था इसलिए कुछ लोग सामूहिक रूप से अपना एक गोष्ट बनाते थे। उस समूह का एक नेता होता था जो गोत्रपति कहा जाता था। गोत्र प्रतीक वशिष्ठ कश्यप भरद्वाज आदि इसी प्रकार के लोग थे। हर एक परिवार के लिए किसी न किसी परिवार में सम्मिलित होना आवश्यक था। इस प्रकार समान आवश्यकता समान लाभ और समान रक्षा की भावना से प्राचीन आय समुदाय में जो गोत्र बने वे एक प्रकार के श्रेणी से थे जिनका विकास स्वाभाविक रूपसे हुआ। प्रत्येक गोत्र में सम्मिलित होनेवाले परिवार एक नेता के संरक्षण में एक विशाल परिवार होते थे जिनके प्रत्येक बालक-बालिकाओं में भाई बहन का नाता होता था इसी कारण परवर्ती काल में सगोत्र विवाह का निषेध हुआ। (भी ए ती दास ऋग्वेदिक कल्चर पृष्ठ १ ६-११ ।)

२—गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुक्तान्यर्बदानिच ।—प्रवर मञ्जरी ।

गोत्राणां तिस्रःकोटस्य सन्वपद्यन्ते ।—प्रवर मञ्जरी भाष्य ४

कि विभिन्न सूत्रों के प्रकराध्यायों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रवर ऋषि, किसी कुल के वे पूर्वज हैं जिन्होंने प्रवर ऋग्वेद के सूत्रों की रचना की है और उन सूत्रों द्वारा अग्नि की प्रशंसा की है<sup>१</sup>। जब यजमान किसी पवित्र कृत्य के समय अपने प्रवर का उच्चारण करता है तो उसका अर्थ यह होता है कि वह अग्नि से प्रार्थना करके बताता है कि वह उन ऋषियों की सतान है जिन्होंने उसकी प्रार्थना में ऋग्वेद के मंत्र रचे थे। यजमान अग्नि को अपने ऋषि के नाम पर आह्वान करता है। आपस्तम्ब सूत्र के 'आषेय वृणीत'<sup>२</sup> की टीका इस प्रकार की गई है —

आर्षेयमृष्यपत्यसम्बन्ध प्राश्नते सङ्गीतं वति

अथवा

ऋषेरपत्यमनिन यजमानस्य ऋषि सन्तानत्वात् त वृणीते प्रार्थयते होमादिभिः। इससे स्पष्ट हा जाता है कि यजमान का सम्बन्ध-प्रवर ऋषि से जन्मत है शिष्यगत नहीं।

विक्रमीय सम्बत् ११३३ और ११८३ के बीच दक्षिण (कल्याण) के चालुक्य (सोलंकी) राजा विक्रमादित्य (छठे)

१—सी वी वेथ हिस्ट्री आफ मिडिल हिन्दू इण्डिया भाग २ पृ ५७।

२—प्रवर का अर्थ आह्वान बुलाव आदि है। वह प्र + वृ + अप से बना है। वृ का अर्थ बुनना है और उसका रूप वृणीति वृणीते इत्यादि होता है।

के दरबार में विद्वानेश्वर नाम के बहिष्ठत थे । उन्होंने याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका भिताक्षरा नाम से की है । उक्त टीका में उन्होंने पूर्वोक्त श्लोक<sup>१</sup> में उल्लिखित 'असमानार्थ क्षत्रिय और वैश्यों गात्रजा' की टीका करते हुए लिखा है कि के गोत्र 'राजन्व विशौ प्रातिस्विक गोत्रामात् प्रवराभावस्तथापि पुरोहित गोत्र प्रवरो वेदितव्यो इसकी पुष्टि में अश्वलायन का मत उद्धृत करके बतलाया है कि तथा च अजमानस्थाप्यान् प्रवृणति इत्युक्त्वा पौरोहित्यान राज विशां प्रवृणीते इत्यश्वलायन ।

उपयुक्त कथन का तापय यह है कि राजाओ और वैश्यों में अपने गोत्र और प्रवर के अभाव में हाने के कारण उनके गात्र और प्रवर पुराहितों के समझने चाहिये । इस टीका का लेकर विवाद किया जाता है कि क्षत्रियों और वैश्यों का अपना गोत्र और प्रवर नहीं है । किन्तु यदि श्रौत सूत्र का प्रवराध्याय देखा जाय ता ज्ञात होगा कि सूत्रकार ने वैश्यों के प्रवर वात्सप्री का उल्लेख किया है । ब्रह्माण्ड<sup>२</sup> और मत्स्य पुराण<sup>३</sup> में वैश्यों के तीन प्रवर भलंबन बत्स और मांकील का उल्लेख है । ऐसी अवस्था में गोत्राभाव के उपयुक्त कथन का यह कारण हा सकता है कि अधिकांश क्षत्रिय और वैश्यों ने बौद्ध और जैन धर्म ग्रहण कर लिया

१—याज्ञवल्क्य स्मृति प्रवराध्याय श्लोक ५३ ।

२—ब्रह्माण्ड पुराण २। ३२। १२१-१२२ ।

३—मत्स्य पुराण १४५। ११६ १२७ ।

था। ऐसी अवस्था में उनके प्रवर और गोत्र-भूज कसे होंगे। और  
 मन्त्र वे पुनः वैश्वदेव क्षत्र में आद को कहे अपने गोत्र और प्रवर  
 की भाङ्गवत्कता रही होगी। ऐसी अवस्था में ही पुरोहितों के  
 मन्त्रों के ग्रहण करने का विधान किया गया होगा। जान पड़ता है  
 इसी आचार पर विश्वामित्र ने एक टीका की है और इसी आचार  
 पर गोत्रों के पुरोहितों से विकास की धारणा का प्रचार हुआ  
 होगा। इस कथन का सम्बन्ध श्रौत के एक सूत्र से भी होता है :  
 उसके सूत्र अब वेदां मन्त्र कृते व स्तुः स पुरोहित प्रवरास्ते इषीच्छन्  
 से ज्ञात होता है कि जिनके कोई मंत्रकृत शक्ति नहीं है  
 वे पुरोहित के प्रवर का प्रयोग कर सकते हैं। इस ही सूत्र  
 यह भी कहता है कि मंत्रकृत पूज वाले लोग पुरोहित के प्रवर  
 का उपयोग नहीं कर सकते उन्हें अपने प्रवर का उपयोग करना  
 चाहिये। एक अन्य सूत्र से पुरोहित के प्रवर का न्यायेन प्रयोग  
 करने का अपवाद किया गया है लेकिन यह अपवाद गोत्रों के  
 लिए नहीं है।

ब्राह्मणों से क्षत्रिय और वैश्यों के गोत्रों के विकसित होने का  
 वा प्रतीपादन किया जाता है वह पुराणों में प्रायः उल्लेखों के एक  
 अपौरुषिक दम विपरीत है। पुराणों में क्षत्रिय और वैश्यों  
 से ब्राह्मण गोत्रों के विकसित होने का उल्लेख  
 चारणा है। ऐसी अवस्था में पुरोहितों से गोत्र

१—श्री श्री वैश्व मिश्रवत्स हिन्दू इतिहास, भाग-२ पृष्ठ ५७७-८  
 २—बृहदारण्यक सुहोत्रादिसौम्यसूत्र इतिहासपुराणरीत्यामाह।

बढ़ने की कल्पना युक्ति सगत नहीं मालूम हाती ।

सुप्रसिद्ध वैय्याकरण पाणिनि ने अपने अष्टध्यायी में गोत्रका अर्थ 'अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम्' अर्थात् पौत्र प्रभृति अपत्यको गोत्र गोत्र का कहते हैं किया है<sup>१</sup> । प्रवरमजरी के समाप्त अर्थ सूत्र काण्ड में लिखा है कि पाणिनि ने जो पौत्र प्रभृति अपत्य का गात्र कहा है उससे अभिप्राय सप्तर्षि और अगस्त्य से जानना चाहिये<sup>२</sup> । काशिका ने इसके उदाहरण में गान्ध वात्स्य इत्यादिका उल्लेख किया है<sup>३</sup> । इस उदाहरणका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —

अजमीक द्विमीक पुरमीकास्त्रयो हस्तिनया । अजमीकात् क व कन्वान्मे  
वात्तियि वत् कान्वायना द्विजाः । —विष्णुपुराण ४।१६।१

पुत्रप्रतिरथस्यासीत कन्व समभवत् नृप ।

मेवात्तियि सुतो यस्मात् कन्वो भवद्विज । —हरिवंश पुराण

बृहत्क्षत्रमहावीर्य नर गर्गा अभवन्मन्यु पुत्राः । गर्गाच्छिनि ततश्च  
गान्धर्वाश्चीन्या क्षत्रोपेता द्विजातयो बभूव ।—विष्णु पुराण ४।१६

गर्गाच्छिनिस्ततो गान्धा क्षत्राद् ब्रह्मण्य वर्तात् ।—भागवत पुराण  
दिवोदासस्व दापादो ब्रह्मर्षिर्मित्रायुतृ प ।

मैत्रायणस्तत सोमोमैत्रेयास्तु तव स्थृता ४—हरिवंश पुराण अ ३२

मुद्गलाद्ब्रिमौद्गलाया क्षत्रोपेताः द्विजातयो बभूव ।—विष्णु पुराण ४।२।१६

मुद्गलाद् ब्रह्मनिवृत् गोत्रम् मौद्गलय सञ्ज्ञितम् ।—भागवत पुराण ।

१ अष्टध्यायी ४।१।१६२

२ यदेतपाणिनीय योत्र लक्षण अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम् इति  
उदप्ययस्त्याहम सप्तर्ष्व किन्मेवेति ।

३ गगस्थापत्यं पौत्र प्रभृति गान्ध वात्स्यः ।

पाणिनि के अनुसार गर्ग का पुत्र अनन्तराप्त्य अर्थात् जिसके बीच अन्य कोई सम्बन्ध न हो गर्गि कहलायेगा<sup>१</sup> गर्गि का पुत्र अर्थात् गर्गका पौत्र गार्ग्य कहलायेगा। इस गार्ग्य से आरम्भ करके आगे जो भी सतति होगी वे सब मात्र तथा गोत्रापत्य कहलायेंगे, अनन्तरापत्य नहीं। किन्तु एक समय में केवल एक ही गार्ग्य होगा। यदि गग के एक से अधिक पौत्र हों तो गार्ग्यका छोटा भाई गार्ग्य न कहला कर गार्ग्यायण कहा जावेगा<sup>२</sup>। वह गोत्रापत्य न कहला कर युवापत्य कहा जायेगा। यदि गर्ग के पौत्र गार्ग्य के कोई सतान हो तो अपने पिता गार्ग्य के जीवित रहते गार्ग्यायण कहा जावेगा गार्ग्य नहीं। एक समय में एक ही व्यक्ति मात्र और गोत्रापत्य कहा जावेगा शेष सब युवापत्य होंगे।

डाक्टर सत्यकेतु विद्यालकार ने अपनी पुस्तक में इसका विशद विवेचन किया है और बताया है कि पाणिनि ने अनन्तरापत्य, गोत्रापत्य, और युवापत्य के भेद दिखाने में जो उद्देश्य प्रबल परिश्रम किया है उसका उद्देश्य क्या है<sup>३</sup>। अष्टाध्यायी के गणपाठ में सैकड़ों शब्दों का उदाहरण लेकर बड़े विस्तार के साथ विविध प्रत्यय लगाकर उसके रूप बनाये गये हैं। इस पर प्रकाश डालते हुए आप कहते हैं—‘हमें मान्य है कि पाणिनि के समय भारत में बहुत से राज और सभ राज्य विद्यमान

१ पौत्र प्रवृत्ति किम् अनन्तरस्य मा भूत् गर्गि ।

२ अष्टाध्यायी ४।१।६५; ४।३।१०१ ।

३ सत्यकेतु विद्यालकार : अश्वमेध जाति का आश्रय इतिहास पृ० १३२ ।



वे। श्रीकाशी प्रसाद जयसवाल ने अष्टाध्यायी के आधार पर वाक्यांशों के अन्तर्गत वे गण राज्यों की सत्ता सिद्ध करी है\*। इस गण राज्योंका शासन प्रत्येक श्रेणिकान्त्र होता था। गणा सभ्य में विविध कुलों के प्रतिनिधि एकत्र होते थे और राज्य कार्यका चिन्तन करते थे। ये प्रतिनिधि बोलों द्वारा नहीं बुने जाते थे अपितु प्रत्येक कुलका नेतृत्व उसका मुखिया गोत्रापत्य या वृद्ध करता था\*। (आज भी पञ्जाब में यही रूप चला आ रहा है। कुलका मुखिया ही प्रतिनिधि समझा जाता है।) इसीलिए कुल में एक ही गोत्रापत्य या वृद्ध होता था। उस कुलके बाकी आदमी बुबापत्य कहते थे। प्रत्येक कुल की विशेष संज्ञा होती थी जैसे गर्ग द्वारा स्थापित कुलके गोत्रापत्य व वृद्ध की संज्ञा गार्ग्य थी। उसी कुलके सब लोग गार्ग्याधरा कहते थे। गात्र से पाणिनि का यही अभिप्राय है।

हम ऊपर विचार प्रकट कर आए हैं कि अग्रवाल जाति का विकास आग्नेय म्लमक गण से हुआ है। अस्तु—इस जाति में गात्र अग्रवाल जाति का तात्पर्य बही रहा होगा जो पाणिनि ने व्यक्त और वीर किये हैं। इसलिये अग्रवाल जाति में जो धारणा गोत्रों के सम्बन्ध में प्रचलित है वह मिथ्या है। अग्रवाल जातिमें जो १७ वा १८ गोत्र माने जाते हैं उनके सम्बन्ध में मेरी धारणा है कि आग्नेय गण में जिस १८ प्रधान कुलोंका हाथ था उनका अथवा जिन मित्रों के सहयोग से वह मित्रपद बना था

१—काशी प्रसाद जयसवाल हिन्दू राजतन्त्र अध्याय १, १४।

२—बृहदारण्यक सूत्राभाष्य। —अष्टाध्यायी ४।१।१६६।

उन्हींका प्रतीक यह गौत्र है। यह भी सम्भव है कि अमरकोश के रूप में उसमें १८ कुलोंका निवास रहा हो और उन्हीं के प्रतीक यह गौत्र हों। जो भी हो, वे पञ्चातकाल में मिताक्षरा के अनुकूल कल्पना कर लिए गये और उसीके आधार पर हमारे गौत्रों के पुरोहितों से जाने की किंवदन्ती चल पड़ी। अभी कुछ दिन हुए लाहोर हाइकोर्ट के एक फैसले में माननीय जजों ने बड़ी योग्यता से अमरकोश जाति के गौत्रोंकी विवेचना की है।<sup>१</sup> उसमें माननीय जजोंने इस बातका विचार किया है कि अमरकोश जाति में जो गौत्र आज प्रचलित है उनका हिन्दू ला में परिभाषित गौत्र से सम्बन्ध हा सकता है या नहीं ? हिन्दू ला में गौत्रके सम्बन्ध में बड़ी बात मान्य है जो विश्वा नेश्वर ने मिताक्षरा में प्रतिपादित किया है, अर्थात् ऋषिय और वैश्यों के गौत्र पुरोहितों से है। ऐसी अवस्था में यदि अमरकोश जाति के गौत्र हिन्दू ला अर्थात् मिताक्षरा के अनुसार हों वा समस्त गौत्र ब्राह्मणों से मिलने चाहिये क्योंकि उनका विकास विभिन्न पुरोहितों से हुआ हुआ। किन्तु यह बात नहीं है। बड़ी खींचतान के बाद भी केवल चार गौत्र कुछ कुछ ब्राह्मण गौत्रों से मिल पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि हिन्दू ला की परिभाषा के अनुसार अमरकोश जाति के गौत्र नहीं हैं अर्थात् मिताक्षरा के अनुसार हमारे गौत्र पुरोहितों के नहीं हैं।

इस स्पष्टीकरण के बाद भी यदि खिच किया जाय कि हमारे

१ आल इन्डिया रिपोर्टर ( १९३३ ) लाहोर, पृ ५५५-५

गोत्र अम्रसेन की सतान और उनके पुरोहितों से है तो विचारणीय हागा कि अम्रसेन के कितने लड़के थे। किंवदन्तियों अम्रसेन की संतान में इस पर चार मत भेद है। अनेक स्थानों पर और गोत्र अम्रसेन के ५४ पुत्रोंकी बात लिखी है। क्या हमारे ५४ गोत्र है ? अगर नहीं, ता किन १७ या १८ लड़कों के गोत्र है ? यदि इस प्रश्न के हाते हुए भी अम्रसेन के पुत्रों से गात्र की कल्पना कर ली जाय ता वणवाल जाति का जा अपने को अम्रसेन के द्वितीय पुत्र—वाराह का वंशज कहती है एक अर्थात् अम्रसेन के द्वितीय पुत्रका ही गात्र हाना चाहिये। पर ऐसी बात नहीं है वहाँ भी अप्रवाल जाति के प्रचलित प्राय सभी गोत्र हैं। इससे अम्रसन पुत्रों से अप्रवाल जाति के गोत्रों के निर्माण की बात स्वत गलत हा जाती है। वणवाल जाति के विकास सम्बन्ध में एक दूसरी किंवदन्ती है कि अम्रसेन के पूवज माहन दास के भाई के वंशज है। यदि इस किंवदन्ती में कुछ भी तथ्य हा ता उससे भी स्पष्ट जान पड़ता है कि हमारे गात्र अम्रसेन के वंशजों और उनके पुराहितों के नहीं हैं।

अब अप्रवाल जाति के १८ गोत्र कौन से हैं इस विषय पर भी अप्रवाल जाति काफी मतभेद है। नीचे हम अप्रवाल जाति के के गोत्र इतिहास लेखकों द्वारा बताये गये गोत्रों की तालिका उपस्थित कर रहे है जिससे इस कथन पर काफी प्रकाश पड़ेगा।

१	२	३	४
शेरिंग <sup>१</sup>	रिसले <sup>२</sup>	कूक <sup>३</sup>	अप्रवैश्य <sup>४</sup> वशानुकीर्तनम्
१ गग	गर्ग	गर्ग	गर्ग
२ गोभिल	गोभिल	गोभिल	गोयिल
३ गरवाल	गावाल	गौतम	गावाल
४ वात्सिल	वात्सिल	वासल	वात्सिल
५ कासिल	कासिल	कौशिक	कासिल
६ सिंहल	सिंहल	सैंगल	सिंगल
७ मगल	मगल	मुद्गल	मंगल
८ भदल	भदल	जैमिनि	भदल
९ दिगल	तिंगल	तैतरेय	तिंगल
१० एरण	ऐरण	औरण	ऐरण
११ तायल	तायल	धान्याश	धैरण
१२ टैरण	टैरण	ढेलन	ढिंगल
१३ ढिंगल	ढिंगल	कौशिक	तिप्तल
१४ तिप्तल	तिप्तल	ताण्डेय	मिप्तल
१५ मिप्तल	मिप्तल	मैत्रैय	तायल
१६ तुन्दल	तुन्दल	कश्यप	गोभिल
१७ गायल	गायल	मान्ढव्य	तुन्दल
१८ विन्दल	गोयन	नागेन्द्र	गबन

१ शेरिंग हिन्दू द्राव्ह्य एण्ड कास्टस एज रिप्रेजेन्टेड इन बनारस ।

२ रिसले दि पीपुल आफ इण्डिया ।

३ इन्ड कूक द्राव्ह्य एण्ड कास्टस आफ इन० इन्ड पी एण्ड  
अवध भाग १ पृ० १६ ।

४ अप्रवाल क्वालि का प्राचीन इतिहास पृ १२६ १७३ ।

	५	६	७	८
	भारतेन्दु <sup>१</sup>	उत्तरितम् <sup>२</sup>	रामचन्द्र <sup>३</sup>	वैद्योत्कर्ष <sup>४</sup>
१	गर्ग	गर्ग	गर्ग	गग
२	गोइल	गोयल	गोयल	गोइल
३	गाबाल	गाबाल	गायन	गोइन
४	वात्सिल	कासिल	भीतल	भीतल
५	कासिल	सिंहल	जीतल	जीतल
६	सिंहल	डिंगल	सिंगल	सिंहल
७	मगल	गबन	वासल	बाराल
८	भइल		एरण	येरन
९	तिंगल		कासल	कासिल
१०	ऐरण		कछल	कछल
११	टैरण		बंगल	तिंगल
१२	डिंगल		मगल	मगल
१३	तित्तल		बिन्दल	बिदल
१४	मिन्तल		ढेलन	ढेलण
१५	तुन्दल		मुधकल	मुधकल
१६	तायल		टेरण	टेरन
१७	गाभिल		तायल	तायल
१८	गबन या गोइन		नागल	नागिल

१ अपरबाहों की उत्पत्ति पृ ६ ।

२ अप्रबाह जन्ति का प्राचीन इतिहास पृ २०५ ।

३ अप्रबाह उत्पत्ति ।

४ अप्रबाह वैद्योत्कर्ष पृ २ ।

	९	१	११	१२
	वैश्योत्कर्ष <sup>१</sup>	वैश्योत्कर्ष <sup>२</sup>	अप्रवालवंश <sup>३</sup>	अप्रवाल <sup>४</sup>
१	गग	गग	गग	गग
२	गाहिल	गोहिल	गाइल	गोथल
३	गालव	गालव	गालव	वासल
४	कासिल	वासिल	वासिल	कासल
५	कौसिल	कौसिल	कासिल	जौदल
६	सिंहल	सिंहल	सिंहल	मैथल
७	मौगिल	मौगिल	भगल	भगल
८	ऐरम्बमैजन	ऐरम्बमैजन	भइल	दौदल
९	तिंगल	तैर	तिंगल	ऐरन
१०	तैरन	नितुन्दन	ऐरन	सहगल
११	रगिल	गाभिल	तैरन	कचहल
१२	तिचल	जाबाहि	टिंगल	तगल
१३	मिचल		तिचल	कौशल
१४	नितुन्दन		मिचल	ताथल
१५	ताथल		तुदल	तागल
१६	गाभिल		ताथल	ढालन
१७	गाइल		गाभिल	मधुकल
१८	भइल		गोइन	गग

१ अग्रवाल वैश्योत्कर्ष पृ २ ।

२ वही पृ २१ ।

३ शालग्राम कवि अग्रवाल वंश पृ ८६ ।

४ डा रामचन्द्र शुभ अग्रवाल पृ ५ ।

	१३ गुलाबचन्द <sup>१</sup>	१४ दिलबारीवैश्य	१५ मोदी <sup>२</sup>	१६ ब्राह्मणोत्पत्ति <sup>३</sup>
				मातृवृद्ध
१	गर्ग	गर्ग	गग	गग
२	गोयल	गोयल	गोइल	गाइल
३	कछल	मीतल	गाबाल	ग्बाल
४	कासिल	जिन्दल	वासिल	बात्सम
५	बिन्दल	सिंगल	कासिल	कासील
६	ढालन	वासल	सिंगल	सिंहल
७	सिंगल	ऐरन	मगल	मगल
८	जिन्दल	कासिल	बिन्दल	भइल
९	मीतल	कछल	तिंगल	तिंगल
१०	तिंगल	तिंगल	ऐरण	ऐरण
११	तायल	मगल	टेरण	टेरन
१२	बासल	बिन्दल	ढिंगल	टींगण
१३	कासल (टेरन)	टेलण	तित्तल	तित्तल
१४	तागल	मुधकल	मित्तल	मित्तल
१५	मगल	टरन	तुदल	तुन्दिल
१६	ऐरन	तायल	तायल	तायल
१७	मधुकल	नागल	गौभिल	गोभिल
१८	गाइन	गौन	गौण	गबन

१ गुलाब चन्द एरण अप्रवाल जातिका प्रामाणिक इतिहास प २४।

२ लक्ष्मीशंकर बिन्दल दिलबारी वैश्य प ६।

३ बाल चन्द मोदी महाराज अप्रसेनका संक्षिप्त जीवन चरित्र प १०।

४ श्री विष्णु अप्रसेन वंश पुराण [भूतखंड], प ५।

१०	१८	१९	२
अप्रसेन वंश पुराण <sup>१</sup>	अप्रसेन वंश पुराण	अप्रसेन पुराण <sup>१</sup>	अप्रसेन पुराण <sup>४</sup>
१ गरग	गर	गर	गर्ग
२ गाइल	गायल	गाइल	गोयल
३ कंछल	वासिल	मीतल	कच्छल
४ कासिल	कासल	जीतल	मगल
५ बिंदल	सींगल	सींगल	बिन्दल
६ टेलण	जींदल	ऐरन	ढालन
७ जीतल	ऐरण	कासल	सिंगल
८ मीतल	मंगल	कछल	जिन्दल
९ तिगल	मीतल	तिगिल	मितल
१० ताइल	मधुकल	मगल	तुंगल
११ वासल	तींगल	मधुकल	कासल
१२ टेरण	तायल	टेरण	ताइल
१३ नागिल	कछल	तायल	बांसल
१४ मंगल	नागल	नागिल	नागल
१५ येरन	बिन्दल	बिन्दल	मुग्दल
१६ मधुकल	ढालण	टेरण	ढरन
१७ सिंघल	इन्दल	वासल	ऐरन
१८ गाइन	गवन	गोइन	गवन

१ श्री विष्णु अप्रसेन वंश पुराण [जीर्णोद्धार खण्ड] प ६ ।

२ वही पृ ८ ।

३ वही प ८ ।

४ वही प ६ ।



	२१	२२	२३	२४
	अनीचन्द <sup>१</sup>	कृष्णकधि	मट <sup>२</sup>	पंजाब जनगणना <sup>४</sup>
१	गर्ग	गग	गर	जिन्दल
२	गोयल	गाइल	माइना	मिन्दल
३	वाशाल	कच्छल	मगल	गर
४	कासल	मगल	बिन्दल	इरन
५	जिंदल	विंदल	ढेलण	ढरन
६	मीतल	ढालन	सिंहल	मितल
७	मगल	नागिल	जितल	मासल
८	बिन्दल	जिन्दल	मीतल	मगल
९	ऐरन	मीतल	तुगल	ताहिल
१०	तायल	तुंगल	मगल	कासल
११	सिंगल	कासल	तायल	बासल
१२	काछल	ताइल	मडल	महवार
१३	तिंगल	वशल	गागल	गायल
१४	कौशल	नागिल	जिन्दल	गाण
१५	नागल	मुद्गल	ऐरण	सैगल
१६	टेहलन	ढलन	ढेरण	
१७	धैरन	गाइन		
१८	गोइन			

१ श्री अमरसेन वंश पुराण [भूत खंड] प १६।

२ वही प १९ १६।

३ वही [भविष्य खंड] प १२ १३।

४ पंजाब जन गणना रिपोर्ट १८८३ प ५३३।

उपर्युक्त सूची का व्याख्यानक अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि प्रत्येक लेखक की सूची बहुत अरों में एक दूसरे से भिन्न है। यह भिन्नता कुछ तो नामों के रूप में है कुछ में अपरिचित नाम है, कुछ में १८ से कम गात्रों का उल्लेख है और कुछ में एक ही गात्र दो बार लिखे गए हैं। इस प्रकार यदि समस्त सूचियों का समन्वय किया जाय ता गात्रों की नामावली १२ तक जा पहुँचती है। पाठकों की सुविधा के लिए हम पूरी सूची छोट कर नीचे दे रहे हैं।

गोत्र	सूची सरया
१ गग	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ (२) १३ १४ १५ १६ २० २१ २२।
२ गरग	१७।
३ गर	१८ १९ २३ २४।
४ गायल	१ २ ६ ७ १२ १३ १४ १५ २ २१, २४।
५ गाइल	४ ५ ८ ९ ११ १५ १६ १७ १९, २२।
६ गामिल	१ २, ३ ४ ५ ९ १० ११ १५ १६।
७ गोहिल	९ १०।
८ गौतम	३।
९ गावाल	२ ४ ५, ६ १५।
१० गालव	९ १० ११।
११ ग्वाल	१९।
१२ गरवाल	१।

१३ गबन	४, ५, ६, १८, २० ।
१४ गौन	१४ ।
१५. गौण	१५, २४।
१६ गोयन गोइन	२ ७ ८ ११, १३ १७ १९ २१ २२ ।
१७ कासिल	१, २ ४ ११ १७ ।
१८ कासिल	५ ६ ८ १३ १४ १५ १६ ।
१९ कासल	७ १२ १३ १८ १९ २ २२ २४ ।
२ कच्छल	७ १३ १४ १७ १८ १९ ।
२१ कच्छल	८ ।
२२ काछल	२१ ।
२३ कच्छल	२ २२ ।
२४ कचहल	१२ ।
२५ कश्यप	३ ।
२६ कौसिल	९ १० ।
२७ कौशल	१२ २१ ।
२८ सिंहल	१ २ ४ ५ ६ ८ ९ १० ११ १६ २३ ।
२९ सिंगल सींगल	७, १३ १४ १५ १८ १९ २० २१ ।
३ सिंघल	१७ ।
३१ सैगल	३ २४ ।
३२ सहगल	१२ ।
३३ विन्दल	१ ७ ८ १३ १४ १५ १७ १८ १९, २० २१ २२ २३ ।

- ३४ बुङ्गल १३ ।  
 ३५ वासल वाशल ८ १२, १३ १४, १७ १९ २०, २१, २४ ।  
 ३६ वासिल १५, १८ ।  
 ३७ वशल २२ ।  
 ३८ वासिल ९ १० ११ ।  
 ३९ वासल ३, ७ ।  
 ४० वासम १६ ।  
 ४१ मित्तल मीतल १ २ ४, ५, ७ ८ ९ ११ १३ १४ १५  
 १६ १७ १८ १९, २० ।  
 ४२ मैत्रेय ३ ।  
 ४३ जींदल जिंदल १२, १३ १४ १८ २० २१ २२ २३ २४ ।  
 ४४ जीतल ७ ८ १७ १९ २३ ।  
 ४५ मङ्गल १ २ ४ ५ ७ ८ ११ १२ १३ १४ १५  
 १६ १७ १८ १९ २ २१ २२ २३ (२)  
 २४ ।  
 ४६ मङ्गल २३ ।  
 ४७ मिन्दल २४ ।  
 ४८ मासल २४ ।  
 ४९. मुद्गल मुग्दल ३ २०, २२ ।  
 ५० मधुकल १२ १३ १७ १८, १९ ।  
 ५१ मुघकल ७ ८, १४ ।  
 ५२ मौगिल ९ १० ।

५३	कौशिक	३, २।
५४.	मैथिल	१२।
५५.	मान्डव्य	३।
५६	भदल, भदल	१, २ ५, ९ ११ १६।
५७	भदल	४।
५८	तगल	१२।
५९	तागल	१२, १३।
६०	तिंगिल	१९।
६१	तिंगल	२ ४, ५ ८ ९ ११ १३, १४, १५ १६ १७ १८ २१।
६२	तुगल	१ २, २० २२ २३।
६३	तुदल	४ ५, ११ २५।
६४	तुन्दिल	१६।
६५.	दिंगल	१।
६६	दीदल	१२।
६७	दिंगल	११।
६८	टीगण	१६।
६९	ढिगल	१ २ ४, ५, ६ १५।
७०	तिचल	२ ४ ५, ९, ११ १५, १६।
७१	तिचिल	१।
७२	तायल	१ २ ४ ५, ७, ८ ९ ११ १२ १३ १४ १५, १६ १८ १९ २१, २३।

७३	तैलदेय	३ ।
७४	ताण्डेय	३ ।
७५	पेरण पेरन	२ ४ ५ ११, १४, १५, १६ १८ १९, २०, २१, २३ २४ ।
७६	परण, परन	१ ७, १२ १३ ।
७७	घेरन	८ १७ ।
७८	औरण	३ ।
७९	टेरन	७, ८ १४ ।
८०	टेलण	८, १४ १७ ।
८१	हरन	२० ।
८२	ढालन	१२, १३, १८, २०, २२ ।
८३	ढेरण	२३, २४ ।
८४	ढेलण	२३ ।
८५	ढेलन	३, ७, २२ ।
८६	तैर	१० ।
८७	तैरन	६, ११ ।
८८	घैरण	४ ।
८९	घैरन	२९ ।
९०	टेहलन	२१ ।
९१	नागल	७, १४ १८, २०, २१, २३ ।
९२	नागिल	८, १७, १९ २२ (२) ।
९३	नागेन्द्र	३ ।

९४	इन्दल	१८ ।
९५.	रंगिल	९ ।
९६	नितुन्दन	९, १० ।
९७	माहना	२३ ।
९८	महवार	२४ ।
९९	जावार	१ ।
१००	जैमिनि	३ ।
१०१	पेरम्ब मैजन	९ १ ।
१०२	धान्याश	३ ।

उपर्युक्त सूची में अनेक नामों में सामञ्जस्य देख कर शायद कहा जाय कि मैं लेखकों द्वारा लिखित एक ही गात्र के उच्चारण भेद का एक न मान कर व्यथ १०४ नामों का वितरण खड़ा किया है। इसलिए कुछ कहने के पूर्व उनका दूसरा वर्गीकरण भी उपस्थित कर देना उचित होगा।

- १ गग गरग गर ।
- २ गायल गाइल गाभिल गाहिल ।
- ३ गौतम ।
- ४ गावाल गालव ग्वाल गरवाल ।
- ५ गवन गौन गौण गायन गाइन ।
- ६ कासिल कासिल कासल कछल काछल कच्छल  
कचहल कश्यप ।
- ७ कौसिल कौसल कौशिक ।

- ८ सिहल सिङ्गल सीङ्गल सेंगल सहङ्गल ।  
 ९. विन्दल वुङ्गल ।  
 १० वासल, वाराल वासिल वराल वासिल वासल,  
 वात्सम ।  
 ११ मिचल, मीतल मैत्रय ।  
 १२ जिन्दल जीतल जीदल ।  
 १३ मङ्गल मण्डल मिन्दल, मासल ।  
 १४ मुद्गल मुग्दल मुषकल, मधुकल, मौगिल ।  
 १५ मैथल ।  
 १६ माण्डव्य ।  
 १७ भदल भइल भन्दल ।  
 १८ तङ्गल ताङ्गल तिङ्गल तिङ्गिल तुङ्गल तुन्दल,  
 तुन्दिल दिङ्गल दीङ्गल, टिङ्गल टीङ्गण डिङ्गल ।  
 १९. तिचिल तिचल ।  
 २० तायल ताइल तैतरेय ताण्डेय ।  
 २१ ऐरण ऐरन परण एरन, येरन, औरन ।  
 २२ टेरन, टेलण, डरन, डालन टेरण डेलण, डेलन तैर,  
 तैरन, घैरन घरैन टेहलन ।  
 २३. नागल, नागिल, नागेन्द्र ।  
 २४. इन्दल ।  
 २५. रङ्गल ।  
 २६ नितुन्दन ।



- २७ माह्व ।  
 २८ जवाहि ।  
 २९. शेख्म मैजन ।  
 ३० जैमिनि ।  
 ३१ धान्याश ।  
 ३२ महवार ।

अगर नाम सादृश्य के आधार पर किये गये इस वर्गीकरण के प्रत्येक वर्ग को एक गोत्र का नाम माना जाय, जिसकी मान्यता से मुझे सन्देह है, ता भी गोत्रों की सूची में ३२ नाम आते हैं जब कि हमारे गात्र केवल १७। या १८ कहे जाते हैं । प्रश्न उपस्थित होता है कि इनमें १८ गात्र कौन से वास्तविक हैं । डाक्टर सत्यकेतु के शब्दों में अप्रवालों में गात्र जीवित जागृत है । वे अब तक लोगों को स्मरण ही नहीं है वरन व्यवहारिक जीवन में भी उनका प्रतिदिन प्रयोग हाता है । विशेषतः सगाई विवाहादि के निम्नय मे ता उसके बिना कार्य ही नहीं चल सकता । विवाह सम्बन्ध निम्नय करते हुए अप्रवाल लोग केवल पिता का गोत्र ही नहीं बचाते अपितु माता का भी गात्र बचाते हैं । इस लिए प्रत्येक परिवार अपने गात्र का स्मरण रखता है<sup>१</sup> । ऐसी अवस्था में ऊपर बताये १०२ अथवा ३२ गात्र नामों में से किसी का गलत कहना कठिन है । प्रत्येक लेखक ने गोत्रों का संकलित

१. — सत्यकेतु विद्यालङ्कार अप्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास पृ० १२७ ।

करते जन्म कितने व विभिन्न रूप में जन्म लेते धर्मव्यवस्था की होती, वेही स्वभावतः अज्ञान की आवृत्ति है। इसके लियेने में इनके फल काय कोई व कोई आधार आवश्यक रहा होगा। जैमिनि और चान्दोग्य के सम्बन्ध में आपत्ति खी जा सकती है क्योंकि उसका उल्लेख केवल ऋक से किया है, और उसके नामों के सम्बन्ध में डाक्टर सत्यकेतु की आपत्ति है कि वे अग्रवालों से कहीं प्रचलित नहीं हैं। उनका कहना है कि सम्भवतः किसी पण्डित ने प्रचलित शात्रों के शुद्ध सस्कृत नाम ढूँढने का प्रयास किया हागा और उसी के आधार पर ऋक ने अपनी सूची में दे दिया हागा। जा कुछ भी हा इतनी विस्तृत सूची में से वास्तविक १८ नामों का ढँढना और उन्हें स्थापित करना अग्रवाल जाति के इतिहास के दृष्टि से आवश्यक है।

हम यहाँ इसका प्रयास नहीं करना चाहते। उसमें काफी परिश्रम की आवश्यकता है जा इस समय सम्भव नहीं है। यहाँ हम केवल प्रत्येक वर्ग में आये नामों पर एक हलकी सी दृष्टि डाल लेना आवश्यक समझते हैं। हम यह अनुमान कर लेते हैं कि प्रत्येक वर्ग में दिया हुआ नाम किसी एक ही शात्र का स्थान भेद से प्रचलित नाम हागा और प्रत्येक लेखक ने उसे अपने स्थान में प्रचलित नामों के अनुकूल ही सङ्कलित किया होगा। डा० सत्यकेतु का भी यही मत है। उनका कहना है कि एक ही गोत्र कहीं वनसल, कहीं चान्सल, कहीं बत्सिल और कहीं वात्सिल या वासल कहा जासक है। जबका यह कहना कुछ शात्रों के सम्बन्ध में ठीक हो सकता है पर यदि उपर्युक्त सूचियों पर ध्यान

दिया जाय और वर्गीकरण की छान बीन की जाय तो ज्ञात होगा कि एक बग में आप नाम एक गात्र के द्योतक नहीं है। अनेक लेखकों ने अपनी तालिका में ऐसे दा बा अधिक नामों को भिन्न भिन्न गोत्र के रूप में गिनाया है। यथा—

वर्ग	गोत्र	लेखक सूची
२	गोयल और गोभिल	१ २
६	कान्सल और कछल	८
६	कान्सल और कछल	७ १९
६	कान्सल और कचहल	१२
६	कासल और कच्छल	२० २२
६	कान्सल और कछल	१३ १४
६	कासिल और कछल	१७
९	विन्दल और तुङ्गल	७
१२	जींदल और जीतल	२३
१३	मङ्गल और मण्डल	२३
१८	तङ्गल और ताङ्गल	१३
१३	मिन्दल और मान्सल	२४
१८	दिङ्गल डिङ्गल और तुङ्गल	१
१८	तुङ्गल ढिंगल और तिङ्गल	२
१८	ढिंगल और तिङ्गल	४, ५, १५
१८	टीङ्गल तिङ्गल और तुङ्गल	१६
१८	ढिङ्गल और तिङ्गल	११

१८	तागल और दींदल	१२
१८	तुन्दल और ढिंगल	४५
२२	ढेरन तेलण	१४
२२	ढेरण और ढेलण	२३
२२	ढालन ढलन और ढेरन	२२
२२	ढरन और ढालन	२०

इस तालिका का दख कर कहना पड़ेगा कि या ता वस्तुतः य भिन्न भिन्न गात्र हैं अथवा हम अपने गात्रों के नामों से अनभिन्न हैं और उनका नाम इतना विकृत हो गया है कि लोगों ने उसे दा गात्र मान लिया है। इस कथन का प्रत्यक्ष उदाहरण कुछ वर्ष पूर्व एक विवाह के अवसर पर गारखपुर जिले में देखने का मिला। एक सज्जन के यहाँ बिहार के एक जिले से बारात आई। गोत्राचार के समय एक पक्ष ने गात्र का उच्चारण सिघल और दूसरे पक्ष ने सिंगिल किया। दानों नाम मुझे एक जान पड़े और सगात्र विवाह की कल्पना अग्रवाल जाति में नहीं की जा सकती इसलिए मैंने तत्काल ही शक्य प्रकट की। उस समय दानों पक्ष इस कथन पर हड़ हो गये कि दानों उच्चारण दो भिन्न गात्रों के हैं। इस प्रकार आज अज्ञान वश अनेक स्थानों पर सगात्र विवाह गात्र के अनाचार से होने लगे हैं। अतएव आवश्यक है कि गोत्रों के सम्बन्ध में अन्वेषण किया जाय। आशा है उत्साही पाठक मेरे इन तथ्यों के आधार पर समुचित खोज करेंगे।

## विस्तार, भेद और शाखा ।

अप्रवाल जाति के पूवज कब तक अगराहा रहे यह कुछ भी ज्ञात नहा । ऐसा सा जान पड़ता है कि जब दशवीं शताब्दी के अन्त मे भारतवष पर मुसलमाना के आक्रमण प्रवास और भेद हुए उस समय ११९४ या ९५ म शहाबुद्दीन गारी ने अगराहे पर आक्रमण किया था । मालूम हाता है उसी समय वहाँ के निवासी इधर उधर बिखरने लग और अन्यत्र जा कर बसने लग । परिणाम यह हुआ कि समय के साथ वे अगर या अगर के रहने वाले अप्रवाले या अप्रवाल कहे जाने लग और कालान्तर म वे लाग एक जाति समझे जान लगे और उनका निवास बाधक नाम, जाति बाधक बन गया और धीरे धीरे इस जाति के स्थान भेद, आचार भेद और घम भेद से कई शाखायें हा गई ।

### स्थान भेद

अगराहा के ध्वस्त होने पर जस बहों के लक्षण अन्य स्थानों म जाकर बसन लगे ता उनका एक बहुत बडा भाग दक्षिण म राज

पूताना की तरफ चला गया। वे मारवाड़ में जाकर बस गये और मारवाड़ी अग्रवाल कहलाने लगे। भारत मारवाड़ी के मध्य-कालीन इतिहास में मारवाड़ का वैश्वीपारिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व था, अफगान और मुगल शासकों की राजधानी दिल्ली थी। दिल्ली से जा माग पच्छिमी समुद्र-तट के बन्दरगाहों का जाता था वह मारवाड़ से गुजरता था। इस व्यापारिक मार्ग में मारवाड़ ठीक बीच में पड़ता था। दिल्ली आने जाने वाले सभी यात्रियों का यह पड़ाव सा था। इस कारण मारवाड़ देशवासियों को व्यापार क्षेत्र में उन्नति करने का अवसर मिला। मारवाड़ निवासी अग्रवालों ने इसका पूरा लाभ उठाया और उनमें उस अपूर्व व्यापारिक प्रतिभा का विकास हुआ जिनके कारण व आज भारत में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अन्य अग्रवालों से प्रथम मारवाड़ के सुदूर मरुस्थल में बस जाने के कारण उनमें कुछ अपनी विशेषताओं का पृथक विकास हुआ। उनकी बोलचाल, रहन सहन रीति रिवाजों में भेद आ गया और वे अन्य अग्रवालों से पृथक हागये और इस कारण अन्य अग्रवालों से विवाह सम्बन्ध आदि करने में सकोच करने लगे।

जा लाग मारवाड़ के अतिरिक्त अन्यत्र बसे वे देशवाली अग्रवाल के नाम से कहे जाते हैं। इन अग्रवालों में भी देश भेद से दो भेद पुरबिंधे और पंछदिये हैं। यह भेद केवल पूरब में रहने वाले अग्रवालों में ही है। पूर्वी संसुक्त प्रान्त और बिहार में जो अग्रवाल कई

शताब्दियों से रह रहे हैं वे अपने का पुरबिए अप्रवाल कहते हैं और जा लोग पच्छिमी युक्तप्रान्त से पिछले डेढ़ दो शताब्दियों में आए वे पङ्कहिये अप्रवाल कहे जाते हैं । यह दानों केवल नाम भेद है, खानपान विवाह शादी में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है पर कभी कभी पचायतो म इन भेदों का लेकर बितरखा खड़ा हा जाया करता है ।

पच्छिमी युक्तप्रान्त और पजाब म रहने वाले अप्रवालों मे भी इसी प्रकार के कई प्रादेशिक भेद हैं यथा—  
 प्रादेशिक उपभेद महामिये जागले हरियालिय बागड़ी सहरालिए लाहिये आदि है । महामिये अप्रवाल वे हैं जा पहले अगराहे से आकर माहिम में बस फिर वहाँ से अयत्र गय । इसी तरह भटिये के आसपास के निवासी जागले हरियाना क निवासी हरियालिय बागड़ के निवासा बागड़ी सहराला जि लुधियाना के सहरालिय और लाहागढ़ ( जि राहतक ) के लाहिय कहलाने लगे । इनके अतिरिक्त मवाड़ी काइयाँ आदि अन्य कई भद भी देश भद के कारण हुआ है । किन्तु इन सब अप्रवालों मे परस्पर खानपान तथा विवाह सम्बन्ध हाता है इनम रीति रिवाजो और रहन सहन म भेद अवश्य है किन्तु पृथक प्रदर्शो में अधिक दिनों रहने के कारण ही है ।<sup>१</sup>

अप्रवाल जातिका एक काफ़ी बड़ा भाग कुमायूँ की पबतों म निवास करता है जा अपने नामों के साथ 'शाह अल्लका प्रयाग

१—सर्वकेतु विद्यालंकार अप्रवाल जातिका प्राचीन इतिहास प २ २२

करता हैं। ये लोग गर्ग जोत्रीय हैं। और केवल एक गोत्र के होने तथा अन्य अग्रवालों से सम्पर्क स्थापित न होने पार्वतीय अग्रवाल के कारण इनमें गोत्र भेद नहीं है और वे आपस में ही विवाह शादी करते हैं। इन लोगों ने पवत में कब और क्यों निवास ग्रहण किया यह ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में कहना कठिन है।<sup>१</sup>

अग्रवाल जाति का एक भाग बम्बई प्रांत में भी निवास करता है जो गुजराती अग्रवाल के नाम से गुजराती अग्रवाल प्रसिद्ध हैं। ये लोग अगरोहा के विध्वंस से पूर्व ही अगरोहा छाड़कर मालवा प्रदेश में चले गए थे इस कारण अपने का आगर का मूल निवासी मानते हैं।<sup>२</sup>

अग्रवाल जाति से भिन्न कुछ ऐसी भी वैश्य जातियाँ हैं जो अपने का अग्रवाल जाति की शाखा मानती हैं। उनका कहना है कि स्थान भेदके आधार पर वे स्वतंत्र जातियाँ मानी वर्णवाल जाने लगी हैं। ऐसी जातियों में वर्णवाल जाति प्रमुख है। यह जाति अपने का अग्रसेन वंशज कहती है। उनका कहना है कि वे लोग अगरोहा से निकल कर बरन देश में आकर बसे और वहाँ के नाम पर बरनवाल नाम से प्रख्यात हुए। कहा जाता है कि बरन, बुलन्दशहरका प्राचीन नाम

१—यह सूचना हमें श्री मदन मोहनजी अग्रवाल एम ए ( काशी ) से प्राप्त हुई है।

२—देखिये—पीछे पृ० १२८।



है। आज भी सरकारी कागजों में एक तहसील का नाम बरन लिखा जाता है।<sup>१</sup>

## आचार भेद

अप्रबाल जाति में अनेक भेद आज आचार और समाज सग ठन के कारण बन गए हैं जिनमे बीसा और दस्सा प्रमुख है। इस भेदका कुछ लाग नस्त या रक्त शुद्धि के आधार पर मानते हैं।

सामान्यत लाग यह समझते हैं कि जा अप्रबाल बीसा और दस्सा रक्त की दृष्टि स पूर्णतया शुद्ध हैं वे बीसा हैं और जा कुल मर्यादा के प्रतिकूल किसी अन्य जाति से उपन्न प्रतिलाम अथवा अनुलाम सन्तान है व रक्तकी दृष्टि से शत प्रति शत अप्रबाल न हाने के कारण आधे अर्थात् दस्से अप्रबाल कहे जाते हैं। मध्य तथा बम्बई प्रान्तम कुछ अप्रबाल पजे भी कहे जाते हैं जिनकी स्थिति दस्सों से भी नीची है। उनम रक्त शुद्धता चौथाई ही समझी जाती है।<sup>२</sup> बीसा और दसा का यह भेद एक पृथक जाति के समान है। बीसा और दसा अप्रबालों में परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं हाता और परस्पर खान पान मे भी अनेक रुकावटें हैं।

दस्से लाग बीसे और दस्से के भेदका रक्तका आधार नहीं मानते। उनका कहना है कि अप्रसेन के पुत्रोंका विवाह दशानन

१-भोलानाय बरनवाल वैश्य इतिहास प ३६।

२-सत्यकेतु विद्यालंकार अप्रबाल जातिक्र प्राचीन इतिहास, प २४।

और विरानम नामक दो राजाओं की कन्यकों से हुआ था। विरानम पुत्रियोंकी संतान दस्ता और विरानम पुत्रियोंकी संतान बीसे कहलाये। इस मत्की पुष्टिका कोई आधार ज्ञात नहीं होता। कुछ लोग कहते हैं कि जो सन्तान अग्रसेनकी नाग पत्नियों से हुई वह बीसा और अन्य रानियोंकी संतान दस्ता कहलाई। इस रूपक में सत्यता कहाँ तक है हम नहीं जानते किन्तु यदि उसमें लेश मात्र भी सत्यता हो ता इससे यही ध्वनि निकलती है कि यह भेद रक्त-भेदके आधार परही है। नागलाग वैश्व के यह बौद्ध ग्रन्थ मंजु श्री मूल कल्प नामक पुस्तक से प्रकट होता है।<sup>१</sup> शुद्ध सन्तान बीसे और अन्य दस्से कहे गये। इस कथनकी पुष्टि अन्य जातियों में पाये जाने वाले बीसा दस्ता पजा और ढह्या नामक भेदों से भी होती है। किन्तु मैं इन सबका रक्तभेद मानने में थोड़ा संकोच करता हूँ। यदि इन भेदोंका कारण रक्त भेद माना जाय ता कहना होगा कि इसका आरम्भ असवण-विवाह निषेध के दिन ही हुआ होगा। यदि ऐसा हाता ता इनम भेदका विकास क्रम उसी ढंगका होता जिस ढंगका भेद हम पहले जातियों के विकास के प्रकरण में बता आए हैं। ऐसी अवस्था में दस्ता नामक जाति धर्मशास्त्रों के अनुसार स्वयं एक वणसकर जाति हाती, पर ऐसा नहीं है। इसलिए जान पड़ता है कि यह भेद केवल आचार के आधार पर बना है।

प्राचीन काल में सामाजिक अपराधों के लिए दंड का स्वरूप समान से बहिष्कार रहा है और यह रूप आज तक संघातकों में

वर्तमान है। आज से कुछ वर्ष पहले तक अप्रवाल समाज से जो लोग किसी कारण बरा अलग कर दिये जाते थे वे बीसा कहलाने के अधिकार से वंचित हो जाते थे। उन्हें लोग दस्सा कह कर सम्बाधित करते रहे हैं। प्राचीन काल में भी यही व्यवस्था रही होगी। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सामाजिक दृष्ट व्यवस्थाका उल्लेख है। उससे जान पड़ता है कि महापातकी अभिशप्त लोग ग्राम से बाहर भोपड़ियाँ बना कर एक साथ रह सकत थे। यह समझते हुए कि "स प्रकार रहना "यायानुकूल है वे एक दूसरे के लिए यज्ञ भी कर सकते थे। एक दूसरे का पढ़ा सकत थे और परस्पर विवाह भी कर सकते थे<sup>१</sup>। इस व्यवस्थाका देखते हुए सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि समाज बहिष्कृत लागाका अपना एक समाज बन जाना असम्भव नहीं है जब कि उन्हें अपने में प्रत्येक प्रकार की सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो ऐसी अवस्था में यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि दस्सा अथवा पजा कहलाने वाला वर्ग इसी प्रकारका वर्ग है। इनमें रक्त भेद सरीखा प्रत्येक दाष शायद नहीं है। हा सकता है कि इसमें कुछ लोग ऐसे भी हों जिनमें रक्त दाष हो पर व इस वर्ग में पीछे से आए होंगे। दस्से लोगों के भी विभिन्न स्थानों पर विभिन्न नाम हैं।

दिलबारी अथवा गिन्दौड़िया (गंधारिया) वैश्य भी अपने को अप्रवाल कहते हैं और कुछ लोग इसका दस्साका एक भेद बताते हैं, किन्तु अप्रवाल बन्धु पत्रिका में प्रकाशित एक टिप्पणी से ज्ञात

१ आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१।२६।८-९

होता है कि इस संसुदाय का वस्त्र अथवा कवीमियों से कोई सम्बन्ध नहीं है—क्योंकि वस्त्रों से इनका चेटी दिलावारी अथवा व्यवहार आदि सब कृत्य पृथक है और रीति गिन्दौबिया वैश्य रिवाजों में भी अन्तर है।<sup>१</sup> इस षग के विकास के सम्बन्ध में कई मत प्रचलित है। इनके गाघारिया नामका सम्बन्ध कुछ लाग अम्रसेन के किन्हीं बराज गंधरष से बताते हैं और कहते है गिन्दौबिया उससे अपभ्रश हाकर बना है।<sup>२</sup> किन्तु कुछ लागोंका कहना है कि मेरठ, दिल्ली, बुलन्दशहर के आस पास के रहने वाले अभ्रवालों में विवाह तथा वृद्ध लागों की मृत्युके अवसर पर निमन्त्रण के साथ साथ गिन्दौड़ा नामक मिठाई बँटती थी पश्चात मेरठ में एक सभा करके गिन्दौड़ा बाँटना बन्द कर दिया गया। कुछ लाग बाद करने के विरुद्ध थे। उन्होंने इस प्रथाका कायम रक्खा जिसके कारण व और उनकी सतान गिन्दौ बिय कहे जाने लग<sup>३</sup>। यह कथन पूव कथनकी अपेक्षा अधिक बुद्धिग्राह्य है। कौम मारुफ जीवन चरित्र महाराज अम्रसेनके लेखक का कहना है कि इनका दूसरा नाम दिलवारी भी है जा दिल्लीवाल का रूपान्तर है<sup>४</sup>।

१ अभ्रवाल बन्धु पत्रिका (आगरा) वर्ष १ अंक ५

२ लक्ष्मीशंकर बिन्दल—दिलवारी वैश्य पृष्ठ १६।

३ अभ्रवाल हितैषी (आगरा) वर्ष ३ अंक ४ पृ १०+

४ रघुवीर सिंह—कौम मारुफ: जीवनचरित्र महाराज अम्रसेन

दस्सों का भेद समझा जाने वाला एक और बर्ण कदीमी नाम से प्रसिद्ध है जो मुख्यत अलीगढ़ खुर्जा, और बुलन्दशहर में पाया जाता है। इस वर्ग के लोग स्वयं अपने को दस्सा कदीमी अग्रवाल का भेद नहीं मानते और दस्सों को हेय दृष्टिसे देखते हैं। इनका कहना है कि ये लोग विशुद्ध अग्रवाल हैं। कुछ तो बीसों को भी अपने से नीचा मानते हैं ये कहते हैं कि इनके पृथ्वी किसी युद्ध में लडने गये और राज्य अन्य लोगो पर छाड़ गये। य लोग युद्ध ही में थे कि अन्य लग देश छाड भाग आए। युद्ध के पश्चात जो लग वहीं रह गये वे कदाभी अर्थात् पुराने स्थान पर रहने वाले कहे जान लगे। इस कथन के सत्यासय के निणय के लिए कोई भी सामग्री अब तक उपलब्ध नहीं है पर हा सकता है इसमें कुछ तथ्य हो। इस वर्ग के सम्बन्ध म एक किंवदन्ती ऐसी भी है कि य राजा दशाननकी कन्यायाकी सतान हैं उनकी कन्याओंको विशाननकी कन्याओं से पहले सत्ताि हुई इसलिए व कदीमी अथवा आदि अग्रवाल कहे गये। पर इस कल्पना म कोई तथ्य नहीं जान पड़ता।

इसी प्रकार आचार भेद स विकसित एक उपवर्ग राजाशाही राजाकी बिरादरी या राजवशी नाम से प्रसिद्ध है। इसके विकास के सम्बन्ध म किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि राजवशी अथवा राजशाही अग्रसनकी नागपत्नी के वंशज सामान्य अग्रवाल और राजकन्या से उत्पन्न सम्मान राजवशी कहलाई इस कारण कुछ लग इसका दस्सा की श्रेणी में गिने की

बैठा करते हैं। किन्तु डाक्टर सत्यकेतु इस कथन का निस्तब्ध कहते हैं। आपका कहना है कि आरम्भ में इनमें और सामान्य अप्रवालों में वस्तुतः कोई भेद न था। १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में फर्रुखसियर के समय जानसेठ निधासी रतन चन्द उन्नति करते करते मुगल सम्राट के दीवान के पद पर जा पहुँचे और उनको राजका खिताब मिला। मुगल साम्राज्य के प्रधान सेनापति दूध (सैयद बन्धु) सैयद अब्दुल खॉं और सैयद हुसेन अली खॉं से इनकी अति घनिष्टता थी। इन्हीं लोगों की उन्नति के साथ साथ उनकी भी उन्नति होती गई। मुसलमानों के इस मेल जालके कारण राजा रतन चन्दके रहन सहन पर जा सामयिक प्रभाव पड़ा और उनमें जा परिवर्तन हुए वह अन्य अप्रवालों को पसन्द नहीं आया और उन्होंने उन्हें अपने समान से बहिष्कृत कर दिया। राजा रतन चन्द ने इस बहिष्कार की उपेक्षा की और अपने कुछ साथियों के साथ अपनी पृथक् एक बिरादरी बना ली यही बिरादरी राजा रतन चन्द के साथी होने के कारण राजकी बिरादरी, राजशाही और पश्चात राजवशी कही जाने लगी।<sup>१</sup> इस कथन के सम्बन्ध में डाक्टर सत्यकेतु ने अपने एक पत्र में मुझे लिखा है कि यह कथन राजशाही अप्रवालों के प्रमुख पुरुषों से बातचीत करने से ज्ञात होता है।<sup>२</sup>

१ सत्यकेतु विद्यालंकार—अप्रवास जाति का प्राचीन इतिहास

पृ० २६।

२ ज्ञेयक के नाम त्त २०११।४० का पृष्ठ १

इस कथन पर दृष्टि डालते ही मनमें एक प्रश्न उठता है कि जब राजा रतन चन्द के कुछ साथियों के समूह से राजाशाही या राजवंशी अग्रवालोंका विकास हुआ तो निश्चय ही उनके गात्रोंकी संख्या चार छ से अधिक न होगी किन्तु वे भी अपने १७ या १८ गात्र बताते हैं। यदि आज किसी बड़े स बड़े नगर के अग्रवाल-समाज पर दृष्टि डाला जाय तो वहाँ आपका पाँच सात गात्रों से अधिक गात्रके अग्रवाल नहीं मिलेंगे। जब वर्तमान समयमें आबा गमन के वैज्ञानिक एवं सुगम साधनों के हात हुए भी सब गात्र एकत्र एक स्थान पर नहीं मिल सकत तो उस काल में जब आवागमन के इतने साधन नहीं थे निश्चय ही राजा रतन चन्द के मित्रों और सम्बन्धियों के निवासकी परिधि संकुचित रही होगी और उनके गात्र भी सीमित रहे होंगे ऐसी अवस्था में दा ही बातें सम्भव है—

१ राजवंशी राजा रतनचन्द के समूह से विकसित समाज नहीं है क्योंकि वे अपने १७॥ या १८ गात्र बताते हैं। या

२ राजवंशियों के १७॥ गात्र नहीं हैं।

इस समस्या पर विचार कर ही रहा था कि मेरी दृष्टि में बुल न्दशहर के आहार नामक स्थान से प्राप्त महाराज भोज प्रतिहार के समयका एक शिलालेख आया जा इस समय लखनऊ के प्रान्तीय सम्रहालय में सम्रहीत है। इसमें हृष सबत २८७ ( वि० सं० ९४३ ) के कुछ पूव और पश्चात के, श्री कचन देवीके मन्दिर की सफाई लिपाई केसर फूल धूप, दीप ध्वजा, सिन्दूर आदि व्यय के लिए दिए गये ८ दानपत्र अंकित है, उस शिला लेख के १४-१६ वीं

पंक्तिवर्गों में जो वाचस्पत्युक्त है उसमें सहाक नाम एक 'राजक्ष-  
तृयान्वय वणिक्' का उल्लेख है ।<sup>१</sup> 'राजक्षतृयान्वय वणिक्' शब्द  
स्पष्ट रूप से 'राजवंशी वणिक्' का तात्पर्य व्यक्त करता है । अब  
यदि वर्तमान वणिक् वैश्य जातियों की सूची पर दृष्टि डाला जाय  
ता 'राजवंशी अग्रवाल' के अतिरिक्त दूसरी कोई वैश्य जाति इस  
नामको साथक करती नहीं ज्ञात हाती। अतएव सम्भव है कि उक्त  
अभिलेख में 'राजक्षतृयान्वय वणिक्' से तात्पर्य वर्तमान राजवंशी  
अग्रवालों से ही हो । इस धारणासे उक्त म्युन्सियमके क्युरेटर डा०  
वासुदेव शरण अग्रवाल भी सहमत हैं । अतएव मेरा अनुमान है कि  
राजवंशी अग्रवालका विकास इतना नवीन नहीं है जितना कि डा०  
सायकेतु मानते हैं और साथही मैं समझता हूँ कि उसका विकास

१ तथातीत संवत् २८ मागशिर बदि ११ अस्यां तिथाविह श्री  
तत्तानदपुरे प्रतिवसमान राजक्षतृयान्वयय वणिक् सहाक इच्छुक पुत्र  
इहैव । पतनाभ्यन्तरे एव हट्ट मध्य प्रदेशे स्वकीयक्रयक्रीता पश्चि  
माभिमुखा वारीत्रिप्रकोष्ठा तलाद् तालकपट्टकसमस्तोच्छ्रय समेतास्या  
वाण्यांवाहा यत्र भवन्ति पूर्वत वणिक् बालक सत्कगृह दक्षिणतो श्री गन्ध  
श्रीदेव्या वारी पश्चिमतो इष्ट भाग उत्तरतो वणिक् जयन्तिसुत सवदेव  
सत्कावारी एव चतुराबाह विशुद्धा पश्चिमाभिमुखावास श्री कनक  
श्रीदेव्याद्वयेण सौवर्णिक महाजनेन क्रयक्रीता क्षतृय साहाकेन नवनवति-  
वर्षाण्यां भावत्यन्तिक विक्रय पत्रेण विक्रीता सप्रदत्ता च ।

—मासुरी वर्ष ४ खं १ सं १ पृ० ३८-३९

२ श्री गोपालदत्त पन्त शास्त्री ने इसका भाष्य राजशाही वैश्य  
लिखा है ।  
—मासुरी वर्ष ४ खं १, सं० १, प ६१



सामंजस हुआ है। चूंकि वही धरती धरती पर करने में सक्षम करते हैं और वे ही इलाकी-धरणा को अभी असम्बन्ध नहीं कह सकते हैं, इसलिए जलजल इल पर क्रिस्त प्रकाश न पड़े उर्ध्वकर्मों के आधार पर यह अनुमान करना उचित है कि कतमान राजेश्वर, राजेश्वरी और राजकी विरादरी नाम से पुकारी जाने वाली अप्रवाल जाति का भाग व धाराओं से विकसित होकर पश्चात किसी समय एक में मिला होगा। एक बार राजा रतन चन्द के समूह के लोग राजा का विरादरी नाम से विकसित हुए होंगे और दूसरी बार राजेश्वर नामक कहा जाने वाला वैश्य समाज मुसलिम काल में राजेश्वरी अथवा राजेश्वरी कहा जाने लगा होगा। पश्चात किसी अवसर पर दान्त मिलकर एक हो गए होंगे। इसका अनुमान राजा रतन चन्द से विकसित बताने वाली अनुश्रुतियों से भिन्न अन्य अनुश्रुतियों से भी होता है। व इस कल्पना की आर सकेव करवी सी जान पड़ती है।

बहतरिया वैश्य भी अपन का आचार और व्यवहार भेद से विकसित अप्रवाल जाति का अंग कहत हैं। इनके सम्बन्ध में

कहा जाता है कि अलकसान्दर के अगाराहा आत्र

बहतरिया मण के समय गोकुलचन्द और रतनचन्द नामक दो व्यक्ति अपने सत्तर साथियों के साथ विश्वासघात

कर उससे जा मिले थे। कुछ लेखक इन्हें मुहम्मद बिन कासिम का सहायक बताते हैं। बात जो भी हो इन विश्वासघाती ७२ परिवासों से अप्रवाल ने अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और इन

७२ परिवारोंकी संतान बहतारिया या बहोतरिया नामसे संतानोत्तर में एक स्वतन्त्र जाति बन गई। पर इस कथन का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। श्री चन्द्रराज अंधारी ने इन लोगों की संतान की जाति का नाम कुलाती और लोहिया बताया है। सम्भवतः यह दोनों बहतारिया के ही भेद हैं।

गोकुलचन्द और रतन चन्द या रतनसेन के साथियों या वंशजों से विकसित शाखा के सम्बन्ध में एक भिन्न कथन भी है। उसके अनुसार रतनसेनकी संतति से राजवर्गी हुए ( यह कथन पूर्वोक्त मुगलकालीन रतनचन्द के नाम सामञ्जस्य के कारण प्रचलित हुआ जान पड़ता है ) और गोकुलचन्द की संतान गाहिले हुए, जा दक्षिण में रहते हैं। गाहिलों के सम्बन्ध में हमें कुछ नहीं मालूम यह नाम हमारे लिए अपरिचित है। गुलहारे, गालवारे आदि नाम तो दृष्टि में आते हैं। सम्भव है यह उन्हीं का काइ स्थानान्तरित नाम हो, इनका सम्बन्ध इस किंवदन्ती से कितना है अज्ञात है।

अमहारी अथवा अमहरी नामक वैश्योंकी एक अन्य जाति है। जा युक्त प्रान्त और मध्य प्रान्त में पाई जाती है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह अमराहावासी और अमहारी या अमवाल जाति की एक शाखा है। इसकी विस्तृत कथा के सम्बन्ध में धोर मत भेद है। अमहारी मित्र ( प्रयाग ) के सम्पादक श्री मयानी प्रसाद गुप्त का कहना है कि अमसेन के पुत्र हरिकी संतान अमहारी वैश्य हैं।

पर अप्रसेन के अस्तित्व के अभाव में इस कल्पना का कोई मूल्य नहीं है। कुछ लोग इसका आचार भेद और कुछ रक्तभेद से विकसित बताते हैं। जाति अन्वेषण नामक पुस्तक में लिखा है कि यह लाग किसी खाने पीने की तुच्छ बात पर लड़ पड़े थे जिससे इन्होंने अपने का अप्रवालों से अलग बना लिया इसकी पुष्टि के लिए अप्रहारी शब्द के अप्र आहारी रूप की कल्पना की गई है जो नितान्त अशुद्ध है। वण विवेक चन्द्रिका में इसका जा वणन है उससे इसकी वर्ण संकरता सूचित हाता है। उसमें लिखा है कि ये लाग अप्रवाल पिता और ब्राह्मणी माताकी सतान हैं। इस कथन में तथ्य कहीं तक है यह बताना कठिन है। वण संकरता से जातियों की कल्पना नितान्त अविश्वसनीय है। इनके गात्र अप्रवालोंके गात्र से मिलते हैं इस कारण नेस्फील्ड और रसलका कहना है कि दोनों जातियाँ पहले एक थीं पर पश्चात् किसी कारण से अलग हो गईं। गात्र की समानता सजाति का सूचक नहीं है। इस कारण यह कहना कठिन है कि वे अप्रवाल जाति की ही शाखा हैं। इनके नाम से ऐसा जान पड़ता है कि इनका विकास अप्रहार शब्द से सम्बन्ध रखता है। अप्रहार शब्द का अर्थ 'देव प्रदत्त सम्पत्ति अथवा 'दानका खेत' होता है। इन दानों अर्थों में से प्रत्येक के साथ इनका सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है किन्तु इस अनुमानकी भीमांसा प्रस्तुत पुस्तक का विषय नहीं है।

महवार नाम जातिको पंजाब के १८८३ ई० की जनगणना रिपोर्ट में अप्रवाल जाति के गोत्र के रूप में उल्लेख करके लिखा है कि

वह अग्रसेनकी शुद्ध पत्नी से जन्मी संतान है। इसी प्रकार केसर  
 बानी महार्ई, गहोई रौनियार, गोलवारा आदि  
 अन्य जातियाँ जातियों के सम्बन्ध में भी अनुमान किए जाते हैं कि  
 वे भी अग्रवाल जाति से ही विकसित जातियाँ हैं,  
 पर इन जातियों के सम्बन्ध में कोई ऐसा विवरण प्राप्त नहीं जिससे  
 इस कथनकी सत्यताकी परख की जा सके।

## धर्म भेद

किसी जातिका विभाजन धम के आधार पर नहीं किया जा  
 सकता। यो अग्रवाल जाति की एक बहुत बड़ी संख्या जैन  
 धर्मावलम्बी है और सरावगी नाम से पुकारी  
 जैन जाती है। किंवदन्तियाँ के अनुसार इन लागो  
 का लाहाचाय स्वामी ने जैन धर्म की दीक्षा दी  
 थी। जैन पुस्तकों में दा लोहाचार्यों का उल्लेख पाया जाता है।  
 एक ता चन्द्रगुप्त मौर्य कालीन भद्रबाहु स्वामी के शिष्य थे और  
 दूसरे सावन्त भद्र स्वामी जा दूसरी ईसा शताब्दी में हुये। सम्भ-  
 वत पहले लाहाचार्य ने ही इन लागों का दीक्षा दी होगी। जैन धम  
 का प्रचार दशवाली अग्रवालो की अपेक्षा मारवाड़ियों में अधिक है।

जैन धर्मावलम्बी लागों के अतिरिक्त अन्य अग्रवाल प्राय  
 वैष्णव धर्म के अनुयायी है। थोड़ीसी संख्या  
 शैवों की भी है पर वस्तुतः वैष्णव और शैव  
 अग्रवालों में किसी प्रकारका व्यवहारिक अन्तर नहीं

है। शैव अग्रवाल भी मास मदिराका सेवन नहीं करते अहिंसा धर्मका पालन करते हैं और उनके आचार-विचार भी वैष्णव सरीखे हैं। रामानन्द तुलसीदास आदि मध्यकालीन सन्तों ने हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के समन्वय करनेकी जिस भावना का उत्तेजन दिया है उसे इस जाति न पूण रूप स अपनाया है इस जाति में राम, कृष्ण और शिवकी पूजा समान रूप से हाती है।

अग्रवाल जाति म जैन और वैष्णवका भेद भी केवल परिवार परम्परा पर ही आश्रित है। क्रियात्मक सामाजिक जीवन म उस का कोई विशेष प्रभाव नहा है। उनके बाच खान पान विवाह सम्बन्ध म कोई रुकावट नहीं है। जैन और अजैन अग्रवालो मे खुले रूप से विवाह सम्बन्ध हाता है। पूव में रहने वाले अग्रवाल अपनी कन्यायोका विवाह जैनियो मे करत है किन्तु जैनी बालिका का अपने घर में नहीं लाते। कहीं कहीं इसके विपरीत भी आचार प्रचलित है। उनका विचार है कि बालिकाका एक दूसरे के परिवार मे जाकर अपना धार्मिक सिद्धान्त परित्याग करना पड़गा अथवा वह अपने धर्मका समुचित पालन न कर सकेगी और ऐसा करना अधम है। किन्तु मारवाड़ी जैनी अग्रवालों मे अधिकाश लाग एक ही अर्थात् गर्ग गात्र के हैं। अत उनका विवाह जैन भिन्न अग्रवालों मे ही विशेष हाता है। इस कारण उक्त भावनाकी रक्षा करना इनके लिए सम्भव नहीं हाता।

पजाब में कुछ अग्रवाल सिक्ख भी हैं, वहाँ कुछ ने अपने का मुसलमान अग्रवाल भी लिखाया है।

४

## वार्तिक

( उक्तानुक्तदुरुक्तानां व्यक्तकारि तु वार्तिकम् )

क

प्राचीन जैन-साहित्य के विद्वान प्रोफेसर हीरालाल जी जैन ( अमेरावती ) का एक पत्र मुझे पुस्तक छपते छपत प्राप्त हुआ है। उसमे आपने मेरे पत्र के उत्तर मे लिखा है— 'अम्रवाल वश का जैन धर्म से बहुत घनिष्ठ और बहुत पुराना सम्बन्ध है। अनेक प्राचीन हस्तलिखित—४००-५०० वर्ष पुराने तक—ग्रंथों की पुष्पिकाओ मे मैंने अम्रवाल व अम्रातकान्वय का उल्लेख देखा है कि उक्त वश के अमुक पुरुष या स्त्री ने यह ग्रन्थ लिखवाकर अमुक मुनि का दिया इत्यादि। कहीं-कहीं वश की दो चार पीढ़ियों का सविस्तार वर्णन भी पाया जा सकता है। ऐसी ग्रन्थान्त पुष्पिकाओ का संग्रह ( आपके कार्य के लिए ) बड़ा उपयोगी हो सकता है। ( तत्काल ) मुझे अपने कुछ नोट्स देखने से आपके विषय सम्बन्धी जा उल्लेख मिल गए वे निम्न प्रकार हैं —

१—पुष्पदत्त कृत आदि पुराण ( अपभ्रंश काव्य ) की एक प्रति तेरापथी बड़ा दिगम्बर जैन मन्दिर जयपुर में है। यह प्रति

संवत् १६५३ ज्येष्ठ शुक्र तृतीया वृहस्पतिवार को सम्राटपुर में राजाधिराज महाराज श्री मानसिंघ जी के राज्यकाल में पशवनाथ चैत्यालय में, श्री मूलसघ नन्दि आम्नाय बलात्कार गण सरस्वती गच्छ कुन्दकुन्दान्वय के भट्टारक पद्मनदि, उनके शिष्य शुभचन्द्र उनके शिष्य जिनचन्द्र उनके शिष्य प्रभाचन्द्र उनके शिष्य चन्द्र कीर्ति, उनके आम्नायवर्ती अमातकान्वय के भूगिल गात्र में सा० श्री <sup>१</sup> के लिए लिखी गई थी ।

२—कवि रङ्गू के अनेक ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा के पाये जाते हैं । इनमें एक सिद्धचक्र माह्यकहा ( सिद्ध चक्र माहात्म्य कथा अपर नाम श्रीपाल कथा ) भी है जिसकी एक प्रति जयपुर में बाबा दुलीचन्द्र जी के भण्डार में है । इसकी अन्तिम प्रशस्ति में कहा गया है कि रङ्गू कवि ने उक्त काव्य की रचना गापाचल ( ग्वालियर ) में की थी जब वहा डगरन्द्र के पुत्र कीर्तिपाल राज्य कर रहे थे । ( इनका समय वि० स० १५२१ वा १४६४ ईस्वी के आस पास पड़ता है । कवि स्वयं पद्मावतापुरवाल थे किन्तु उन्होंने जिन साहुजी के लिए ग्रंथ रचा वे हरसिंघ साहु अग्रवाल वंश के थे ( सिरि अहरवाल बसहि महतु )

३—उक्त रङ्गू कवि कृत प्राकृत भाषा का 'सिद्धान्त सार' नामक ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ की जयपुर के बाबा दुलीचन्द्र के भण्डार वाली प्रति की अन्त प्रशस्ति में कहा गया है कि वह प्रति अमातकान्वय के गग गात्र के कुटुम्ब की गूजर पुत्री बाई भीसा ने

१—कौटुम्बिक विवरण जैनजी के पास नोट नहीं है ।

अपने कर्मों के सब के लिए लिखवाई थी। इस प्रति का लेखन-काल माह सुदि ५ सोमवार स० १८६४ है।

४—उक्त रङ्गू कृत पार्श्वनाथ पुस्तक ( अपभ्रश काव्य ) की एक प्रति फरखनगर के जैन भण्डार में है, जिसका लेखनकाल सवत् १५४८ चैत्र वदि ११ शुक्रवार है। यह प्रति भट्टारक हेमचन्द्र देव की आश्रय वाले 'अम्रातकान्वय' के गाइल गात्र के आशीवाल सराफ के कुटुम्ब वालो ने लिखाई थी।

५—यशकीर्तिकृत अपभ्रश काव्य हरिवश पुराण की एक प्रति जयपुर के बाबा तुलीचन्द के भण्डार मे है। इस काव्य की रचना का समय विक्रम सवत् १५२० भादों सुदि ११ गुरुवार है। इस काव्य का कराने वाले अम्रवाल वश गर्ग गात्र के दिउदा साहु थे। काव्य प्रशस्ति में उनके वश का सविस्तार वर्णन है।

६—पूर्वोक्त रङ्गू कृत अपभ्रश काव्य पार्श्वनाथ पुराण की एक प्रति जयपुर के तेरापथी जैन मन्दिर में है। प्रशस्ति में कहा गया है कि उक्त ग्रथ खेऊ साहु ने लिखवाया था जा जागिनीपुर के सुप्रसिद्ध अम्रवाल कुल के एडिल गात्र के थे। कुटुम्ब का सविस्तार वर्णन है।

उपयुक्त पुष्पिकार्ये अम्रवाल जाति के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। हमे उनसे निम्न तथ्य ज्ञात हाते हैं।

१—अम्रसेन की कल्पना अभी हाल की है। इस धारणा की पुष्टि हाती है। अम्रातकान्वय शब्द इसी बात का द्योतक है कि वे



लोग अप्रोतक ( अगरोहा ) के मूल निवासियों के वंशज हैं अप्रसेन के वंशज नहीं ।

२—अप्रवाल शब्द उतना नवीन नहीं है जितना कि मेरा अनुमान था ।<sup>१</sup> इस शब्द का प्रचार पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ गया था जैसा कि उपयुक्त पुष्पिका २, ५ और ६ से ज्ञात होता है । किन्तु सम्भवतः इस काल तक अप्रवाल जाति नहीं बना था वह समाज मात्र था और वंश अथवा कुल के नाम से पुकारा जाता था ।

३—अप्रवाल' में बाल प्रत्यय का अर्थ निश्चित रूप से निवासी है क्योंकि रङ्गू कवि ने पुष्पिका (२) में अपने का पञ्चावतीपुरबाल लिखा है ।

४—इन पुष्पिकाओं में अप्रवाल जाति के भूगिल गग एडिल और गोइल चार गात्रों का उल्लेख है । इसमें भूगिल और एडिल गात्र हमारे लिए सर्वथा नवीन हैं और आज की प्रचलित गात्र-सूचियों में यह नाम नहीं मिलता और न इसका किसी नाम से सादृश्य ही है ।<sup>२</sup> गात्र सम्बन्धी अनुसन्धान की दृष्टि से यह सूचना बड़े महत्व की है ।

( ख )

आगर ( मालवा ) का प्राचीन लेखों में आकर रूप मिलता है । इसलिए कहा जा सकता है कि आग्नेयो द्वारा आगर के नाम

१—देखिये पृ ६ ।

२—मिलाइये पृ १ ८-११ ।

३—देखिये गोत्र प्रकरण ।

करण की कल्पना<sup>१</sup> ठीक नहीं है। किन्तु 'ग' के स्थान पर 'क' का प्रयाग प्राचीन लिपि में प्रचुर रूप से प्राप्य है। यथा—नवनाग का रूप नवनाक भी है।<sup>२</sup>

( ग )

किंवदन्तियों के अनुसार आगरा को अम्रसेन के पिता महीधर ने उसके जन्म के हृष में बसाया था।<sup>३</sup> अन्य किंवदन्तियों में अम्रसन का ही उसका बसाने वाला कहा गया है। डा० सत्यकेतु विद्यालकार उसे अम्रबाल जाति द्वारा बसाया हुआ उपनिवश कहते हैं। किन्तु मध्यकालीन जैन कार्यों में उसका नाम अम्रसेनपुर पाया जाता है।<sup>४</sup> इसका दखते हुए अम्रसेन और उम्रसेन का जा समन्वय अन्यत्र किया गया है<sup>५</sup> उचित ही है। इससे यह भी जान पड़ता है कि १६वीं १७वीं शताब्दी तक अम्रसेन और उनके द्वारा आगरा के बसाय जाने की कल्पना का स्थान नहीं मिला था। प्रसगत यह भी कह देना उचित जान पड़ता है कि आगरा का एक प्राचीन नाम अर्गलपुर भी है।

१—देखिये पृ १२६।

२—जायसवाल—अधकार युगीन भारत प २६७ पाद टिप्पणी।

३—देखिये प ६।

४—नाहटाद्वय ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह प ८१ २४४।

५—पृ ५२-६६।

६—अलवर से प्राप्त अकबर कालीन वि सं १६६४ भाषा बदि १३ शनिवार के एक शिलालेख में उल्लेख। यह सूचना आदरणीय महामहोपाध्याय डा गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी से मिली है।

( ४ )

अप्रवाह का रूप अगाज है यह मैंने इस पुस्तक में प्रतिपादित किया है।<sup>१</sup> डाक्टर आल्तेकर ने हाल में ही सूचित किया है प्राकृत के वैयाकरण हेमचन्द्र ने पेशाची प्राकृत का जा कि पजाब में प्रचलित थी एक नियम दिया है जिससे 'ज' के 'च' में परि वर्तित हो जाने की मेरी बात का समर्थन हाता है। इसका विस्तृत निर्देश आपने जनल आफ न्युमिस्मेटिक सासाइटी आफ इण्डिया भाग ४ खण्ड १' में प्रकाशित होने वाले मेरे लेख में सम्पादकीय टिप्पणी के रूप में किया है।

---

